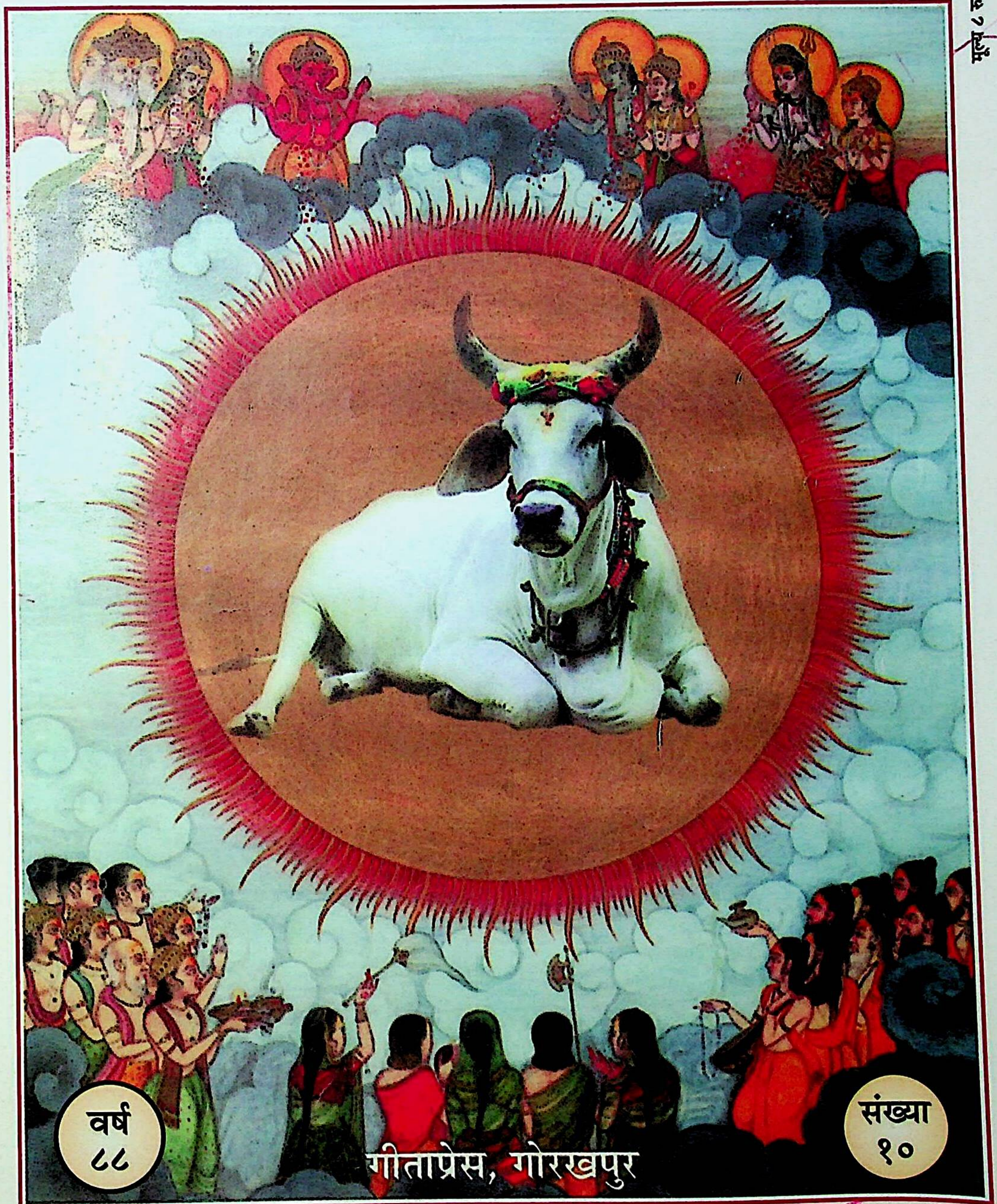
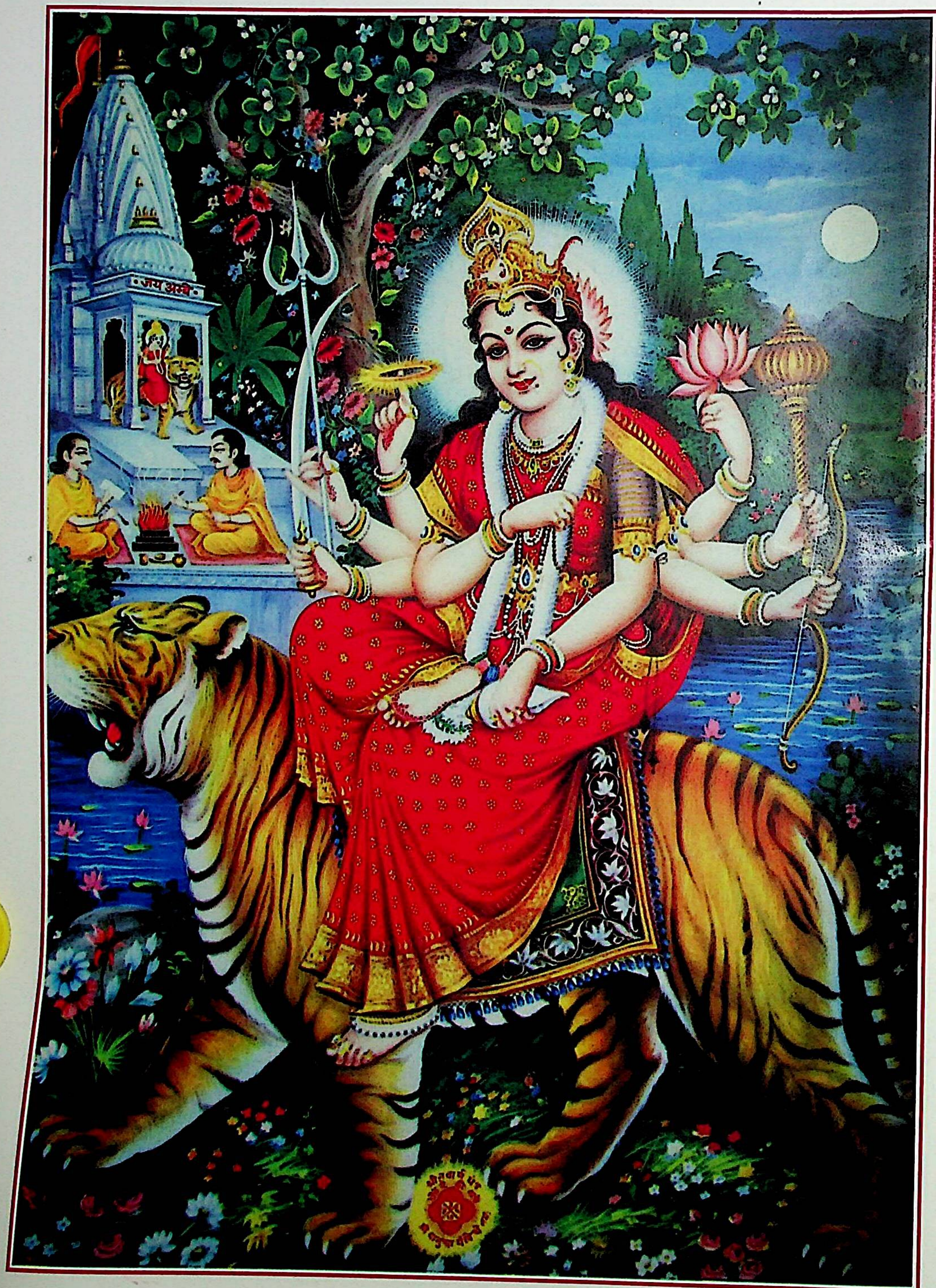
* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ७ रुपये

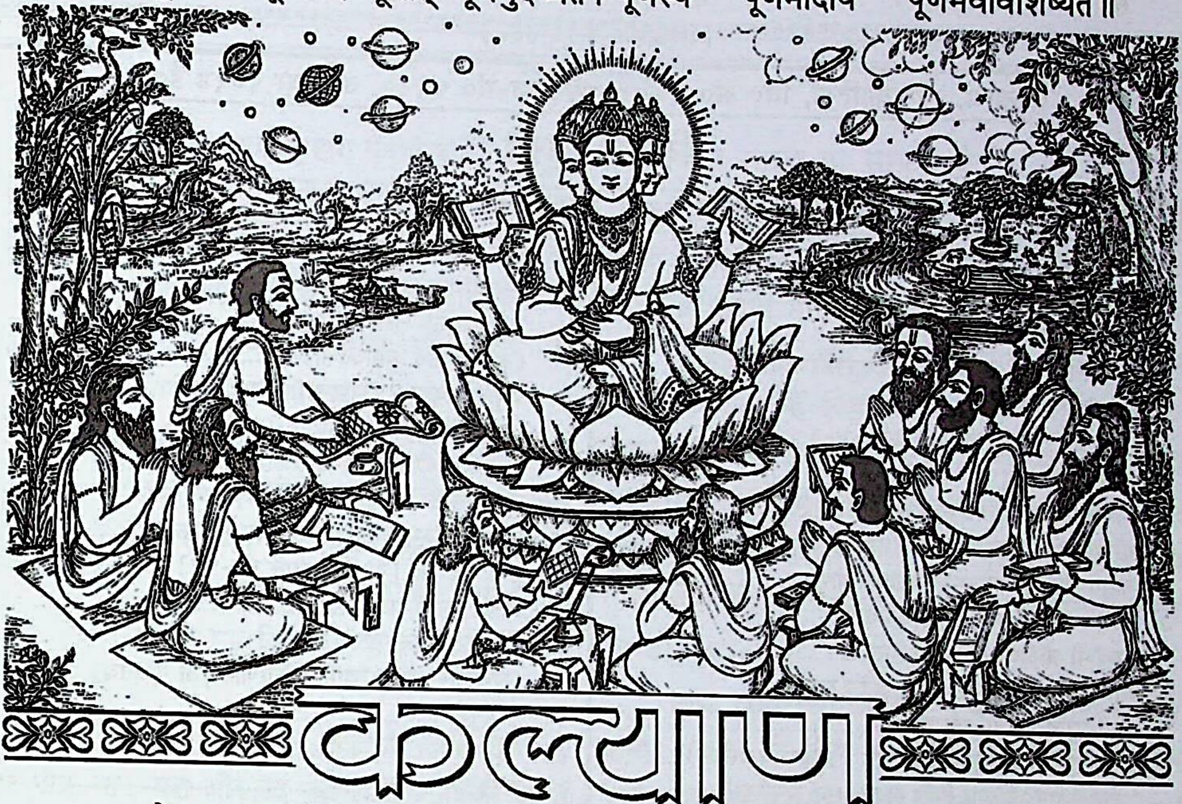


सबके लिये परम आराध्या भगवती गोमाता



सिंहवाहिनी देवी दुर्गा

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव।
विद्याबलं देवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि॥

वर्ष ८८ | गोरखपुर, सौर कार्तिक, वि० सं० २०७१, श्रीकृष्ण-सं० ५२४०, अक्टूबर २०१४ ई० | संख्या १०

पूर्ण संख्या १०५५

'नमो देव्यै महादेव्यै'

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः। नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः। ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः॥
कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः। नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः॥
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै। ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः। नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः॥

देवीको नमस्कार है, महादेवी शिवाको सर्वदा नमस्कार है। प्रकृति एवं भद्राको प्रणाम है। हमलोग नियमपूर्वक जगदम्बाको नमस्कार करते हैं। रौद्राको नमस्कार है। नित्या, गौरी एवं धात्रीको बारम्बार नमस्कार है। ज्योत्स्नामयी, चन्द्ररूपिणी एवं सुखस्वरूपा देवीको सतत प्रणाम है। शरणागतोंका कल्याण करनेवाली वृद्धि एवं सिद्धिरूपा देवीको हम बारम्बार नमस्कार करते हैं। नैर्ऋती (राक्षसोंकी लक्ष्मी), राजाओंकी लक्ष्मी तथा शर्वाणी (शिवपत्नी)-स्वरूपा आप जगदम्बाको बार-बार नमस्कार है। दुर्गा, दुर्गपारा (दुर्गम संकटसे पार उतारनेवाली), सारा (सबकी सारभूता), सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा और धूम्रादेवीको सर्वदा नमस्कार है। अत्यन्त सौम्य तथा अत्यन्त रौद्ररूपा देवीको हम नमस्कार करते हैं, उन्हें हमारा बारम्बार प्रणाम है। जगत्की आधारभूता कृति देवीको बारम्बार नमस्कार है। [दुर्गासप्तशती]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर कार्तिक, वि० सं० २०७१, श्रीकृष्ण-सं० ५२४०, अक्टूबर २०१४ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क: अजिल्द ₹ २०० | सजिल्द ₹ २२०

पंचवर्षीय शुल्क: अजिल्द ₹ १००० | सजिल्द ₹ ११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 45 (₹ 2700), पंचवर्षीय US$ 225 (₹ 13500) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : kalyan@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-www.gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।

कल्याण

याद रखो—जबतक तुम्हारा मन विषयोंमें आसक्त है, जबतक तुम विषय-मोहकी—शरीर, धन, स्त्री, पुत्र, मकान, जमीन, मान, यश आदिको अपना मानकर उनकी रक्षा करना चाहते हो और जबतक भोगोंके लिये तुम्हारे मनमें उद्वेग, चिन्ता, विषाद और शोक है, तबतक तुम भगवान्‌के मार्गपर नहीं आये हो।

याद रखो—विषय-मोहको तोड़े बिना तुम भगवान्‌की ओर मुँह नहीं मोड़ सकते। जो पूर्वकी ओर चलना चाहता है उसको पश्चिमकी ओर पीठ करनी ही होगी। इसी प्रकार विषय-भोगोंको पीठ दिये बिना, उनके लिये निःस्पृह हुए बिना भगवान्‌की ओर चलना सम्भव नहीं है।

याद रखो—जो लोग संसारके धन-सम्पत्ति, पुत्र-पौत्र, मान-यश और पद-अधिकार आदिकी प्राप्ति होनेपर भगवान्‌की कृपा मानते हैं, वे कृपाका रहस्य नहीं समझते। इन सबकी प्राप्ति होनेपर इनमें मोह बढ़ता है, दिन-रात इन्हींका चिन्तन होता है। विषयचिन्तनसे क्रमशः आसक्ति, कामना, क्रोध या लोभ, सम्मोह, स्मृतिभ्रंश और बुद्धिनाश होकर अन्तमें सर्वनाश—आत्माका पतन हो जाता है। अतः जो वस्तुएँ भगवान्‌को भुलाकर आत्माके पतनमें कारण हों, उनकी प्राप्तिमें भगवत्कृपा कैसी? यह तो कृपाका विस्मरण है। कृपा तो तब है, जब चित्त भगवच्चिन्तनपरायण हो जाय।

याद रखो—भगवत्कृपाका अर्थ है—भगवान्‌का अखण्ड और अनन्य चिन्तन होना। भगवान्‌का चिन्तन, भगवान्‌की स्मृति ही यथार्थ सम्पत्ति है और भगवान्‌की विस्मृति ही बड़ी विपत्ति है—

विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः।
विपद् विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः॥

'सांसारिक (धन-जन, मान, यशके नाशरूप) विपत्ति विपत्ति नहीं है और (इनकी प्राप्तिरूप) सम्पत्ति नहीं है। भगवान् विष्णुका विस्मरण ही विपत्ति है और नारायणका स्मरण ही सम्पत्ति है।'

क्योंकि भगवत्स्मरणसे परमानन्दरूप परमात्माकी प्राप्ति होती है और भगवद्विस्मरणपूर्वक विषयचिन्तनसे नरकोंकी प्राप्ति होती है।

याद रखो—तुम यदि भगवान्‌के मार्गपर चलना चाहते हो तो तुम्हें विषयका मोह छोड़ना ही पड़ेगा। फिर यदि भोग-पदार्थ रहेंगे तो वे भगवान्‌की पूजाके उपकरणरूपमें रहेंगे और तुम उनके द्वारा जो स्वकर्मका आचरण करोगे, उससे भगवान्‌की पूजा होगी। जबतक तुम विषय-पूजनमें लगे हो, तबतक भगवान्‌के मार्गसे दूर हो।

याद रखो—विषयोंकी गन्दगीमें भगवान् नहीं आते। आकर भी छिप जाते हैं। अपने हृदयको साफ करो, तब उसमें भगवान्‌की दिव्य झाँकी होगी।

याद रखो—किसी बाहरी दिखावेसे भगवान् नहीं मिलते। कपड़े बदल लिये, स्थान बदल लिया, आसन लगा लिया, ऊपरके और भी परिवर्तन कर लिये। साधनकी शुद्ध भावनासे करनेपर ये बाह्य साधन भी अच्छी चीज हैं; परंतु ये वास्तविक साधन नहीं हैं। तुम यदि इन बाह्य साधनोंको ही सब कुछ मानकर अपनेको साधक या साधु मान बैठोगे तो धोखा खाओगे और नुकसान उठाओगे।

याद रखो—जबतक तुम्हारा मन, तुम्हारी बुद्धि भगवान्‌का चिन्तन नहीं करते, जबतक तुम्हारा चित्त निरन्तर भगवच्चिन्तनमें ही नहीं लग जाता, तबतक बाहरी साधनोंसे कुछ नहीं हो सकता।

याद रखो—तुम्हारा जीवन यदि भगवान्‌के अखण्ड स्मरण-सुधा-रसको चखे बिना ही चला जायगा तो इससे बड़ी और कोई हानि नहीं हो सकती। जीवनका प्रत्येक क्षण भगवान्‌के मधुर मंगलमय चिन्तनमें ही लगे, तभी जीवनकी सार्थकता और जीवनका परम लाभ है।

'शिव'

श्रद्धा, विश्वास और प्रेम

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

प्रश्न—भगवान् और महात्मा पुरुषोंके प्रभाव और गुणोंको सुनकर भी श्रद्धा-विश्वास नहीं होता और उसके अनुसार तत्परतासे चेष्टा नहीं होती, इसमें क्या कारण है?

उत्तर—भगवान् तथा महापुरुषोंके प्रभाव और गुणोंको सुनकर भी श्रद्धा नहीं होती—इसमें कारण है अन्तःकरणकी मलिनता और तदनुकूल चेष्टा न होनेमें कारण है श्रद्धाका अभाव। अन्तःकरणके अनुरूप ही श्रद्धा होती है। भगवान्ने कहा है—

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥

(गीता १७। ३)

'हे भारत! सभी मनुष्योंकी श्रद्धा उनके अन्तःकरणके अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं भी वही है अर्थात् जैसी जिसकी श्रद्धा है, वैसा ही उसका स्वरूप है।'

अन्तःकरणकी मलिनता दूर होनेसे उत्तम श्रद्धा होती है और श्रद्धा होनेसे ही तत्परता होती है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।

(गीता ४। ३९)

अन्तःकरणकी मलिनताको दूर करनेका उपाय इस समय सबसे बढ़कर भगवान्के नामका जप है। इसलिये कैसे भी हो—हठसे या प्रेमसे—नाम-जप करता रहे। नाम-जपसे अन्तःकरणकी मलिनता नष्ट हो जायगी, उसमें सात्त्विक श्रद्धा उत्पन्न होगी और फिर भगवान् तथा महात्माओंमें आप ही श्रद्धा हो जायगी और उनके कथनानुसार तत्परतासे चेष्टा होने लगेगी।

प्रश्न—सत्संग करते हैं, फिर भी मन जैसा होना चाहिये, वैसा नहीं होता—इसमें क्या कारण है?

उत्तर—इसमें भी सत्संगका प्रभाव न जानना एवं अन्तःकरणकी मलिनता ही हेतु है। अन्तःकरण मलिन होनेसे सत्संगका रंग नहीं चढ़ता। मैला कपड़ा रंगमें डुबानेपर उसमें रंग अच्छा नहीं चढ़ता। स्वच्छ होता है तो रंग अच्छा चढ़ता है। (प्रेम, आसक्ति, रुचि, राग—इन सबका अर्थ एक ही है।) पारससे लोहा छुआ देनेसे लोहा सोना बन जाता है—यह बात सत्य है, किंतु बीचमें यदि व्यवधान होता है तो वह सोना नहीं बनता। इसी तरह महात्माओंके संगसे रंग चढ़ता ही है, किंतु यदि अविश्वासका व्यवधान होता है तो नहीं चढ़ता। जिन्हें पूर्ण विश्वास होता है, उनके रंग चढ़ता ही है।

भगवान् न्यायकारी हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं, यह विश्वास हमारा हो जाय तो फिर हम एक भी पाप नहीं कर सकते। ईश्वरकी सत्ता मान लेनेसे ही पापका नाश हो जाता है। मानते हुए भी यदि हम पाप करते हैं तो यही समझना चाहिये कि किसी एक अंशमें ही मानते हैं, पूर्ण विश्वास नहीं है। सरकार जिस कामसे प्रसन्न नहीं है अर्थात् जो काम सरकारके प्रतिकूल है, उसे हम नहीं करते। परमात्मा सर्वज्ञ हैं, सर्वत्र हैं और सर्वसमर्थ हैं। जो कोई भी उन्हें सर्वज्ञ समझ लेता है, उससे पाप नहीं हो सकते।

प्रश्न—जैसे पिता पुत्रको अनुचित कामसे बलपूर्वक मना कर देता है, वैसे ही ईश्वरको भी मना कर देना चाहिये; पर वे मना क्यों नहीं करते?

उत्तर—मना करते हैं—महात्मा पुरुषोंद्वारा—मनके द्वारा—सब प्रकारसे मना करते हैं, किंतु ईश्वरने जीवोंको स्वतन्त्रता दे रखी है। इसलिये जीव परतन्त्र होनेपर भी स्वतन्त्र है। जैसे हमें बन्दूक चलानेका लाइसेंस है। हम राजाके कानूनोंके हिसाबसे ही बन्दूक चला सकते हैं। कानूनसे बँधे हुए हैं, किंतु फिर भी हम चाहे जिस किसीपर कानूनके विरुद्ध भी चला तो सकते हैं न? फिर चाहे दण्ड मिले। ठीक वही बात यहाँ भी है।

प्रश्न—जब कभी कोई बात एक-दो मिनटोंके

लिये समझमें आ जाती है तो वह ठहरती क्यों नहीं? ईश्वरको उसे ठहरा देना चाहिये—इतनी तो सहायता करनी ही चाहिये।

उत्तर—भगवान्से जो सहायता चाहता है, उसे सहायता मिलती है। जो यह प्रार्थना करता है कि हे भगवन्! मेरा मन निरन्तर भजन-ध्यानमें लगा रहे तो उसे भगवान् सहायता देते हैं। सामान्य सहायता तो सभीको है, किंतु जो विशेष सहायता चाहता है, उसे दी जाती है। इसलिये उनसे प्रार्थना करनी चाहिये, जिससे कि वह स्थिति छूटे नहीं। जिसका ऐसा विश्वास है कि मैं भगवान्की शरण हूँ—मेरी धारणाको दृढ़ और अन्तःकरणकी शुद्धि भगवान् ही करते हैं, उसकी हो जाती है। एक सज्जन चाहते हैं कि मैं अमुकके आज्ञानुकूल चेष्टा करूँ, कभी-कभी कुछ चेष्टा भी करते हैं, पर अवसर पड़नेपर पीछे हट जाते हैं तो यही समझना चाहिये कि उनका इस बातमें पूरा विश्वास नहीं है कि चाहे प्राण भले ही चले जायँ, इनकी आज्ञा ही पालनीय है। यदि भगवान्में पूरा विश्वास करके भगवान्से सहायता माँगें तो भगवान् इसके लिये भी सहायता दे सकते हैं।

प्रश्न—श्रद्धा, प्रेम और दयापर कुछ विशेष रूपसे कहिये?

उत्तर—ऐसा प्रतीत होता है कि मुझे कहनेकी आदत पड़ गयी है और आपलोगोंको सुननेकी। बार-बार कहा जाता है। आप सुनते ही हैं, किंतु जबतक बात समझमें नहीं आती, काममें नहीं लायी जाती, तबतक सदा ही नयी है और सदा ही बार-बार सुननेकी आवश्यकता है।

बात है बड़ी अच्छी। इसमें कुछ भी खर्च नहीं होता। मूर्ख-से-मूर्ख भी इसे कर सकता है। इसमें बल, बुद्धि, धन, जाति, वर्ण या कुल—किसीकी भी आवश्यकता नहीं है। यह साधनकालमें भी प्रत्यक्ष शान्ति देनेवाली है। फिर सुनकर भी यदि काममें नहीं लायी जाती तो यही समझना चाहिये कि विश्वासकी कमी है। संसारमें जो प्रत्यक्षमें सुख-शान्ति देनेवाली होती है, उसे तो लोग करनेके लिये तैयार रहते हैं। फिर यह तो आदि, मध्य और अन्त—सर्वत्र आनन्द देनेवाली है। अभी आरम्भ कीजिये, अभी शान्ति-आनन्द तैयार है। यह नहीं कि कोई घण्टे-दो-घण्टे बाद आनन्द मिलेगा।

बात यह है—प्रथम तो यह विश्वास कर लेना चाहिये कि परमात्मा दीखते नहीं—तब भी हैं और सर्वत्र हैं, जैसे प्रेत दीखता नहीं है, पर है—ऐसी झूठी कल्पना करके भी लोग भयभीत और दुखी हो जाते हैं। फिर सच्ची धारणा करनेपर सुख और शान्ति प्रत्यक्ष मिलें, इसमें तो कहना ही क्या है? इसलिये परमात्मा न भी दीखें तो भी मान लेना चाहिये कि वे हैं—अवश्य हैं।

ईश्वर दयालु हैं, प्रेमी हैं। उनकी दया और प्रेम सर्वत्र परिपूर्ण हो रहे हैं। अणु-अणुमें उनकी दया और प्रेमको देख-देखकर हमें मुग्ध होना चाहिये, सर्वदा प्रसन्न रहना चाहिये और इसे साधन बना लेना चाहिये। इसमें न कुछ परिश्रम है और न किसी अन्य वस्तुकी आवश्यकता है।

ईश्वरकी दया और प्रेम अपार है—असीम है। यह बात मनमें है तो ईश्वरकी स्मृति निरन्तर रहनी चाहिये। सर्वत्र ईश्वरकी दया और प्रेम परिपूर्ण हैं, जैसे बादलमें सर्वत्र जल परिपूर्ण है। दया और प्रेमका बड़ा भारी समुद्र उमड़ा हुआ है—भरा हुआ है। उसमें अपने-आपको डुबो दें। चारों ओर बाहर-भीतर, नीचे-ऊपर सर्वत्र ईश्वरकी दया और प्रेमका समुद्र परिपूर्ण है। जैसे सूर्यकी धूपमें हम बैठते हैं—हमारे चारों ओर धूप-ही-धूप पूर्ण है, उसी तरह परमात्माकी दया और प्रेम सर्वत्र पूर्ण है। सूर्यका प्रकाश तो केवल बाहर ही है; किंतु दया और प्रेम तो बाहर-भीतर सर्वत्र पूर्ण हो रहे हैं। इस प्रकार देख-देखकर हर समय मुग्ध होते रहना चाहिये। अहा! हम धन्य हैं। हमपर ईश्वरकी कितनी भारी दया है। सब देशमें, सब कालमें, सब वस्तुमें ईश्वरकी दयाका दर्शन करें और इसी प्रकार प्रेम बढ़ायें।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५।२९)

ईश्वर परम सुहृद् हैं। सुहृद्का अर्थ क्या है? दया और प्रेम जिसमें हो, उसका नाम सुहृद् है। उसकी दया और प्रेम अनन्त हैं, अपार हैं, अणु-अणुमें, कण-कणमें व्याप्त हो रहे हैं। एक बादशाहकी दया हो जाती है तो आनन्दका ठिकाना नहीं रहता। एक महात्माकी दया हो जाती है तो आनन्द समाता नहीं, फिर ईश्वरकी दया तो अपार है। फिर क्या बात है? (सहजमें ही हमारी स्थिति बदल सकती है। हम बहुत शीघ्र परमात्माको पा सकते हैं।) हर समय यह भाव जाग्रत् रहना चाहिये—अहा! ईश्वरकी हमपर कितनी दया है। ईश्वरका हमपर कितना प्रेम है। सबपर समानभावसे अपार दया है। जब इतनी दया है, तब हमें भय, चिन्ता, शोक करनेकी क्या आवश्यकता है। हम चिन्ता, भय करें यह तो हमारी मूर्खता है। भय किसका? न वहाँ भय है, न चिन्ता है, न मोह है। यह हमारी अज्ञानता थी—हम जानते नहीं थे कि प्रभु इतने दयालु हैं। अब कहाँ चिन्ता? कहाँ भय? कहाँ शोक? प्रभुकी अपार दया है—यह साधन बना लें। हर समय ध्यान रखें, मनसे इस प्रकार अनुभव करें तो उसी समय शान्ति और आनन्दका भण्डार भरा पड़ा है। इस साधनसे थोड़े कालमें ही साक्षात् प्रभुकी प्राप्ति हो जाय।

एक समृद्धिशाली पुरुष है, स्वप्नमें भिखारी बन गया, इसलिये दुखी हो रहा है, किंतु जागनेपर दुःख कहाँ? दुःख था ही नहीं, उसने बिना हुए ही दुःख मान लिया। इसी तरह हम भी अज्ञानताके कारण ही दुखी हो रहे हैं। ईश्वरकी दया और प्रेम तो सर्वत्र पूर्ण हो ही रहे हैं। हम मानते नहीं, तभी हम दुखी होते हैं, पर हम नहीं मानते हैं, उस समय भी ईश्वरकी दया तो है ही। बस, मान लें तो आनन्द-ही-आनन्द है। ऐसा अमृतमय आनन्द प्रत्यक्ष है, इसमें कुछ भी शंका नहीं है, फिर उसे क्यों छोड़ते हैं? **'प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्'**—प्रत्यक्ष आनन्दका अनुभव हो रहा है, फिर उसमें प्रमाण क्या? केवल मान लेना ही साधन है। जप या ध्यान—कुछ भी करनेकी बात नहीं कही। केवल मान लो, बस, इतना ही करना है। वह परम सुहृद् है, जिसमें अपार दया हो—हेतुरहित प्रेम हो। भगवान्‌की अपार दया है। वे अपार दयादृष्टिसे हमें देख रहे हैं, फिर किस बातकी चिन्ता है। माता स्नेहसे बच्चेको पकड़कर यदि फोड़ेको चिरवा रही है तो चिन्ता क्यों करनी चाहिये? माँ देख रही है न? बच्चा यदि रोता है तो उसका बालकपन है। समझदार तो रोता भी नहीं। हमपर कोई भी दुःख आये तो समझना चाहिये—हमारी माँ, भगवान् हमें सुखी करनेके लिये, पवित्र करनेके लिये गोदमें लेकर चिरवा रहे हैं।

कितनी दयाभरी दृष्टि है। अपार दयाकी छटा छायी हुई है। कोई स्थान उनकी दया और प्रेमसे खाली नहीं। उनकी दया, प्रेम सर्वत्र परिपूर्ण हो रहे हैं। वे दर्शन देनेको तैयार हैं। वे सब प्राणियोंके सुहृद् हैं। यदि पूर्ण विश्वास हो जाय कि भगवान् हमें दर्शन देंगे तो उसी क्षण उन्हें दर्शन देना पड़ेगा, एक क्षण भी वे नहीं रुक सकेंगे।

नास्तिक पुरुषोंको तो विश्वास नहीं है। वे समझते हैं कि ईश्वर है या नहीं। जिनका होनेमें विश्वास है, वे समझते हैं कि पता नहीं मिलते हैं या नहीं। दूसरे यह समझते हैं कि मिलते तो हैं, पर बहुत भजन-ध्यान करनेसे मिलते हैं। यह भी भूल है। भगवान् बड़े ही दयालु हैं। यदि भजन-ध्यान कराकर मिलते हैं तो फिर दयालु क्या हुए? यदि हम दृढ़ विश्वास कर लें कि वे तो बड़े ही दयालु हैं, उनके न मिलनेमें हमारी अज्ञानता ही कारण है। हमें मिलेंगे, अवश्य मिलेंगे और आज ही मिलेंगे—ऐसा दृढ़ निश्चय कर लें तो आज ही मिल जायँगे, इसमें तनिक भी शंका नहीं है। [क्रमशः]

विज्ञान और श्रद्धा

(पं० श्रीगंगाशंकरजी मिश्र, एम० ए०)

जगत् ईश्वराधीन है—यह हमारे यहाँकी एक प्रधान धारणा है, पर इधर कुछ वर्षोंसे कई विज्ञानवादी पाश्चात्य विद्वानोंका भी इस ओर ध्यान जाने लगा है। सर आलिवर लॉज, जिनकी ८९ वर्षकी अवस्थामें मृत्यु हुई, इंग्लैण्डके एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे। सन् १९०२ ई० में वहाँकी विख्यात पत्रिका 'हिबर्ट जर्नल' के प्रथम अंकमें उनका एक लेख 'कंट्रोवर्सी बिटवीन सायंस ऐंड फेथ' (विज्ञान और श्रद्धामें झगड़ा)-के नामसे निकला था। उसमें वे लिखते हैं कि 'मनुष्यके सामने एक प्रश्न हर समय आता है कि क्या संसारका नियन्त्रण किसी ऐसे जीवित व्यक्ति (शक्ति)-के हाथमें है, जिसके पास प्रार्थनाद्वारा पहुँच हो सकती है, जिसपर प्रेमका प्रभाव पड़ता है, जो इस योग्य है तथा जिसकी इच्छा है कि वह भविष्यको देखे, हस्तक्षेप करे और प्राणियोंको बिना किसी दबावके ऐसा मार्ग दिखाये कि जिसमें वे किसी-न-किसी तरह अपनेको उसके अनुसार ही बना सकें? या यह कि क्या अपने-आप ही संसार उत्पन्न हुआ है, अपने-आप अपने ऊपर नियन्त्रण रखनेवाला एक यन्त्र है, जिसकी रचना ऐसी है कि वह जन्म-कर्मके प्रभावोंसे प्रेरित होकर नीचे-ऊपर जाता रहता है अर्थात् उसकी उन्नति-अवनति होती रहती है?'

इसका उत्तर देते हुए उन्होंने उसी लेखमें लिखा कि 'मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि सारे विश्वमें कोई दैवी शक्ति व्याप्त है, जो उसका निरीक्षण तथा नियन्त्रण कर रही है। अवश्य नियमोंके अनुसार ही, पर इन नियमोंके पीछे ज्ञान और प्रेम है। विश्व किसी तरह 'स्वसम्पूर्ण' नहीं समझ पड़ता, पग-पगपर उसकी एक ऐसी स्थितिके साथ सम्बन्धका आभास मिलता है, जिसका इन्द्रियजन्य ज्ञानसे अनुभव नहीं हो सकता, जिसमें ऐसे नियम हैं कि जिनका अभीतक विज्ञानको पता भी नहीं है, पर वे नियम वैसे ही ठीक और पक्के हैं जैसे कि वे नियम, जिनके द्वारा भौतिक जगत्का नियन्त्रण हो रहा है।'

आगे चलकर लॉजको प्रेतात्माओंतकमें विश्वास हो गया, वे अपने जीवनके अन्ततक पक्के वैज्ञानिक बने रहे, पर उनका यह विश्वास डिगा नहीं, उलटे और भी पक्का होता गया। अपनी मृत्युके कुछ ही दिन पहले उन्होंने अपने एक मित्रको लिखा कि 'मैं अब उच्च लोकमें जानेवाला ही हूँ।'

इधर मनोवैज्ञानिकोंकी भी आँखें खुल रही हैं। डॉक्टर जुंग मनोविज्ञानके एक धुरन्धर पण्डित माने जाते हैं। उनकी एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, जिसका नाम है 'दि इंटरप्रिटेशन ऑफ दि परसनैलिटी' (व्यक्तित्वकी व्याख्या)। इसमें वे लिखते हैं कि 'मनुष्य-स्वभावके ज्ञानमें इधर बड़ी वृद्धि हुई है, जबसे यह पता लगा है कि व्यक्तिके ज्ञानकी तहमें एक कोई अदृष्ट, छिपी हुई शक्ति है, जो उसके व्यवहारको इस ढंगसे निश्चित करती है कि जिसका उसे कुछ भी पता नहीं रहता। इसके प्रमाण बराबर बढ़ते जा रहे हैं कि व्यक्तिगत अज्ञानके नीचे एक ऐसी तह है, जिसकी उत्पत्ति व्यक्तिगत अनुभवसे नहीं होती, जो स्वाभाविक है, जो व्यक्तिगत नहीं, इस अर्थमें विश्वव्यापी है कि उसके द्वारा जो और जिस प्रकारका व्यवहार प्रेरित होता है, वह सभी मनुष्योंमें थोड़ी-बहुत मात्रामें समान ही मिलता है।'

जबसे पिछला महायुद्ध छिड़ा था, पाश्चात्य विद्वानोंमें धीरे-धीरे यह धारणा दृढ़ होती जा रही है कि आज जो कुछ हो रहा है, उसका सूत्रधार कोई दूसरा ही है। 'क्रिश्चियन न्यूज लेटर' में डॉक्टर ओल्ड लिखते हैं कि 'मानवजाति अदृश्य शक्तियोंकी प्रेरणासे अपने

स्थानसे च्युत होती हुई दीख पड़ रही है, जिस ओर वह जाना चाहती है, उसके विपरीत ही जा रही है। जब मनुष्यपर विपत्ति पड़ती है, जब वह 'किंकर्तव्यविमूढ़' हो जाता है, तभी उसे ईश्वरपर जगत्की निर्भरताका अनुभव होता है। आज संसारके सामने ऐसा ही संकट उपस्थित है। क्या कोई एक व्यक्ति इसके लिये जिम्मेदार ठहराया जा सकता है? हिटलरकी क्या हस्ती थी कि वह ऐसी अग्नि प्रज्वलित कर दे कि जिसमें सर्वस्व स्वाहा हो जाय? वह तो एक निमित्तमात्र है। इस महायुद्धसे किसका भला हुआ? जो हारा सो तो हारा ही, जो जीता उसने भी क्या पाया? धन-जन गँवाकर अन्तमें हाथ क्या लगा और जो कुछ मिला, उसका उपभोग ही कौन करेगा? यह सब जानते हुए भी युद्धमें दीपकपर पतंगकी तरह लोग टूट रहे थे। इसको अदृष्टकी प्रेरणाके अतिरिक्त और क्या कहा जाय?'

आज यूरोपको इन बातोंका अनुभव धीरे-धीरे हो रहा है। विज्ञानकी भूलभुलइयोंसे भटकता हुआ वह किसी स्थिर मार्गकी खोजमें है, पर वह उसे मिल नहीं रहा है। विदेशी पत्र-पत्रिकाओंमें 'नव-व्यवस्था' पर लेखोंकी भरमार रहती है। इसपर धड़ाधड़ पुस्तकें निकलती चली आ रही हैं, पर कोई बात निर्णीत नहीं हो पाती है। वास्तवमें उसको जाननेके लिये यूरोपको पहले विज्ञानकी परिभाषा ही बदलनी पड़ेगी। केवल भौतिक ज्ञानको ही विज्ञान नहीं कहा जा सकता, प्रयोगशालाओं और काँचकी नलियोंके भीतर ही सारा ज्ञान नहीं भरा हुआ है। **'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म'**, **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** जबतक इस विज्ञानकी ओर यूरोपका ध्यान नहीं जाता, तबतक वह यों ही भटकता रहेगा। भौतिक विज्ञानमें उसने जो उन्नति की है, उसकी प्रशंसा करनी पड़ती है, संसारको उसकी आवश्यकता है, पर जबतक उसका सम्बन्ध उस उच्च विज्ञानसे नहीं जोड़ा जाता, तबतक उससे अनर्थ ही होता रहेगा। पर तमाशा तो यह है कि हम स्वयं अपने यहाँके इस उच्च विज्ञानको भूलकर पाश्चात्य विज्ञानके गोरखधन्धेमें पड़ते जा रहे हैं। मानसिक गुलामी हमारी इतनी बढ़ी हुई है कि यदि हमसे कहा जाय कि अमुक बात हमारे शास्त्रोंमें लिखी हुई है, तो न हमारा उसपर विश्वास होगा और न हम उसे मानेंगे। पर यदि वही बात किसी पाश्चात्य विद्वान्के मुखसे निकल जाय तो फिर वह समझमें आ जाती है। तब तो इतना पक्का प्रमाण मिल जाता है कि फिर उसपर हमें स्वयं विचार करनेकी आवश्यकता ही नहीं रहती है। इसीलिये आज अपनी हर एक बातके समर्थनमें पाश्चात्य विद्वानोंका मत उद्धृत करना पड़ता है। खैर, इसी तरह सही, बात तो समझमें आये! [सिद्धान्त]

'चोखा राम नाम रस'

(स्वामी श्रीनर्मदानन्दजी सरस्वती 'हरिदास')

यह राम नाम रस चोखा है।
हरि दर्शन हेतु झरोखा है॥

जिसने भी कभी लिया आश्रय,
नाशे उसके सब संशय भय।
पाई इस जग में सदा विजय,
खाया न कभी भी धोखा है॥ यह राम०॥

यह मधुर सुधा-रस का प्याला,
जो पान करे हो मतवाला।
पाये सुकीर्ति सौरभ-माला,
अनुपम आनन्द अनोखा है॥ यह राम०॥

इससे बढ़कर कुछ और नहीं,
समझी जिसने यह बात सही।
नर तन पा हुआ कृतार्थ वही,
चूका न सुनहला मौका है॥ यह राम०॥

जो हुआ हो गया होने दो,
अब भी यदि राम नाम जप लो।
पहुँचो प्रभु धाम राममय हो,
'हरिदास' भवाम्बुधि सोखा है॥ यह राम०॥

भगवान् ही एकमात्र सच्चे आश्रय हैं

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

'एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।'

एक भगवान्की आस करे और उस आसमें क्या करे? बड़ी सुन्दर बात है, दुःखोंसे छूटनेकी, भगवान्के मंगलमय विधानमें विश्वास लानेकी आस करे। ये ऐसी चीज है कि हम भगवान्के मंगल विधानको जहाँ पलट देना चाहते हैं, वहाँ भगवान्की शक्तिमें तो विश्वास करते हैं कि वे पलट देंगे, पर भगवान्के सौहार्दमें और भगवान्की बुद्धिमें विश्वास नहीं करते। भगवान्को सोचना है ठीक सोचेंगे। वे हमारे लिये जो करेंगे, हमारे मंगलके लिये करेंगे—ऐसा विश्वास यदि हो तो भगवान्के सामने हम अपनी स्कीम क्यों रखें? ये हमारी स्कीम है, इसे पूरा करो। हम तुम्हारे भक्त हैं और तुम सर्वशक्तिमान् हो, तुम्हारी आराधना करते हैं, हम तुम्हारे प्रेमी हैं? तो हमारी इच्छाको तुम पूर्ण कर दो। हम जो स्कीम तुम्हारे सामने रखें, तुम अपनी शक्तिके द्वारा उस स्कीमको पूरा कर दो और जब हम ये कहेंगे उनसे कि स्कीम भी तुम बनाओ और कौन-सी स्कीम हमारे लिये ठीक है, इस विषयको भी तुम सोचो और उसे पूरा भी तुम करो और जब चाहो तब करो, जैसे चाहो तैसे करो और न चाहो तो मत करो। बस, ये जो भगवान्के प्रति यों कह देना है फिर भगवान् सारा भार अपने ऊपर ले लेते हैं—**'योगक्षेमं वहाम्यहम्'** अहम् वहामि—बाबा! तुम्हारा भार मैं ढोऊँगा। भैया! तुम्हारा भार मैं ढोऊँगा, अब तुम निश्चिन्त होकर मेरा चिन्तन करो। निश्चिन्त होकर चिन्तन करनेवालेको ही भगवान् ऐसा कहते हैं। जगत्से निश्चिन्त हो जाय। उनके चिन्तनपरायण हो जाय—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

'अनन्याश्चिन्तयन्तो माम्'—जो अनन्य हैं, अनन्य चिन्तन करनेवाले हैं, जो दूसरे सारे चिन्तनोंसे निश्चिन्त होकर भगवान्के चिन्तनमें परायण हैं। इस प्रकार भगवच्चिन्तनमें नित्य लगे हुए जो लोग हैं, उन लोगोंका योगक्षेम भगवान्ने कहा कि यह सारा भार मैं ढो लूँगा। तुम निश्चिन्त चिन्तन करो। निश्चिन्त चिन्तन यानी जगत्की चिन्ताको छोड़कर चिन्तन तो क्या होगा—उसके जगत्का चिन्तन भी भगवान् ही करेंगे। यह कल्पनाकी बात नहीं है। यह कवियोंकी कल्पनाका बगीचा नहीं है। यह सत्य है, तथ्य है और यह ठीक ऐसा ही है, बिलकुल प्रेक्टिकल चीज है। यह बनावटी बात—कहने-सुननेकी बात नहीं, परंतु होना चाहिये विश्वास। विश्वासके बिना यह फल हमारे सामने आयेगा नहीं। होते हुए भी हम उसको और रूपमें मानेंगे, और रूपमें ग्रहण करेंगे तथा और रूपमें स्वीकार करेंगे। उसमें अदला-बदली चाहते रहेंगे। चित्तकी अशान्ति मिटेगी नहीं। अतएव **'सर्वतोभावेन'** सब प्रकारसे अपना सारा भार उनपर डालकर उनके कदमोंपर छोड़कर हम निश्चिन्त रूपसे उनका चिन्तन करें तो वे देखेंगे क्या रोग है? क्या दवा है? दवा वे ला देंगे, दवा दे देंगे, पथ्य दे देंगे, सँभाल रखेंगे, सेवा करेंगे। यह बात सत्य बात है, इसमें किसी प्रकारका संशय है ही नहीं। होता ऐसे है कि वे करा देते हैं किसीके द्वारा। एकने—एक साहित्यिकने सुदामाका चरित्र लिखा, गुजरातीमें एक बड़े नामी साहित्यिक हैं, हमारे मित्र हैं, बड़े ऊँचे ओहदेपर रहे हुए बड़े विद्वान्—उन्होंने लिखा सुदामाका चरित्र, नरसीका चरित्र। लिख-लिखाकर अन्तमें उपसंहारमें लिखा—ये सब बातें जो लिखी गयी हैं, सम्भव है ठीक हों, पर कोई ऐसा सेठ होगा, वह नरसीपर कृपा करता होगा और वह नरसीके लिये इन सब चीजोंकी व्यवस्था कर देता होगा और नरसीने समझा होगा—भगवान्ने

किया। तो उन्होंने लिखा सब कुछ, पर लिख-लिखा करके सिद्धान्तका जहाँ उन्होंने ये प्रतिष्ठापन किया, वहाँ ये कहते—होगा कोई उसने कर दिया होगा। नरसीके लिये यहाँ भी कोई बात नहीं, वे तो कह देंगे—हमारा सेठ वही है, उसी सेठने किया और कोई सेठ नहीं। उसीने किया और दूसरे सेठके मार्फत वही करता है। ये भी ठीक है, परंतु जहाँ विश्वासी भक्त हैं, जहाँ विश्वास है, वहाँ किसी माध्यमकी आवश्यकता नहीं है। भगवान्‌में न कोई शक्तिका अभाव है कि वे स्वयं आकर कोई काम न कर सकते हैं और न भगवान्‌को लाज ही आती है कि छोटा काम हम कैसे करें। जरा-सी, नन्हीं-सी चीज—ये छोटी-सी चीज है, इसको एक अदना सिपाही कर देगा? हम क्यों करने जायँ। यह बात भी नहीं। न तो लाज-शर्म आती है और न उनकी शक्तिमें कहीं कमी है। वे सब कुछ कर सकते हैं और स्वयं करनेको प्रस्तुत हैं, पर हमारा विश्वास होना चाहिये। फिर वे लाद दे, लदा दे, लदानेवाला साथ दे—ये सभी चीजें वे अपने-आप कर देंगे। विश्वास हो तो तब। विश्वासमें दो बातोंकी आवश्यकता है—जगत्‌की आशाका सर्वथा परित्याग और भगवान्‌की आशाका अनन्य आश्रय। भगवान्‌से सब प्रकारसे सम्बन्ध और संसारसे सब प्रकारसे सम्बन्ध-विच्छेद। जगत्‌का सम्बन्ध भगवान्‌के नाते—

नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं॥

तुलसीदासजीने कहा—जितने नाते-नेह संसारके हैं, ये सब-के-सब रामको लेकर हैं। भला कोई मर जाय, उसका राम निकल जाय। उसको कोई घरमें क्यों रखे? और अकेला पास बैठेगा तो कहेगा दो आदमियोंको कि रातका समय डर लगता है। अरे! अबतक साथ घुट-घुटकर बात करते थे, अब निर्जीव हो गया डर क्यों लगता है? अन्दरमें जो राम था वह निकल गया, वह भगवान् जो निकल गया, प्रियतम जो निकल गया। रामको लेकर सम्बन्ध सारा-का-सारा है। हम रामको भुलाकर रामके सम्बन्धको लेकर जगत्-सम्बन्ध मानते हैं—यह ठीक नहीं। जगत्‌के सम्बन्धको तोड़कर, जगत्‌के आश्रयको छोड़कर रामसे सम्बन्ध जोड़ दें, रामसे नाता जोड़ दें। बस, राम अपनी कृपासे जो कुछ भी करते हैं उसमें राजी रहे, फिर यह प्रश्न नहीं हो कि यह क्यों नहीं किया?

आश्रयका अर्थ यह नहीं कि हम बतायें और हम पूछें—यह किया क्यों नहीं आपने? इसे कब करेंगे आप? और ऐसा करना चाहिये। न कहीं ऐसा करेंगे न पूछेंगे ऐसा क्यों किया? और न कहेंगे—ये कब करोगे? ये कुछ नहीं—कोई सवाल नहीं। कोई प्रश्न ही नहीं, वह जो करे, जब करे, जैसे करे, जिस समय करे, करे अथवा न करे। बस, हम तो उसके हैं, उसमें हैं, वह हमारा है, हमारा-उसका सम्बन्ध यही कि वह हमारा है—यह बात हमारे जीवनमें रहे। इसके सिवा और कुछ रहे नहीं तो इस प्रकार यदि आशाका परित्याग, आकांक्षाका परित्याग हम कर सकें तो हम सुखी होंगे और नहीं तो समस्या सुलझेगी नहीं। समस्याको लिये ही पैदा हुए और समस्याको लिये ही मर जायँगे। नयी-नयी समस्याएँ उत्पन्न होती रहेंगी और उन समस्याओंके संस्कारोंको लिये हुए, राग-द्वेषको लिये हुए अगले जन्मोंके कर्मोंका निर्माण हमारे लिये होता रहेगा। हम फँसे रहेंगे वैसे ही। आये थे जीवन बनानेके लिये और नये बन करके नये सम्बन्ध लेकरके चले गये। इस मानव-जीवनकी अगर विफलता इष्ट हो तो भोगोंका आश्रय कीजिये और मानव-जीवनकी सफलता इष्ट हो तो भगवान्‌का आश्रय कीजिये। जो भी मार्ग खुले—दोनोंमें आपका अधिकार हमारा अधिकार, मुझको आशीर्वाद दीजिये कि भगवान्‌में लगूँ और आप सबसे प्रार्थना है—आप भी लगिये।

लघुकथा—

भक्त कन्याका आदर्श

(स्वामी श्रीअवधूतानन्दजी गिरनारी)

बुन्देलखण्डमें बलभद्रपुर नामकी एक रियासत थी। वहाँ एक राजकुमारी पैदा हुई थी, जिसका नाम था विमलाकुमारी। विमलाको एक गुरुजी संस्कृत तथा हिन्दी पढ़ाते थे। दोपहरीको जब गुरुजी स्नान करके ठाकुरजीकी पूजा किया करते थे, तब विमला एकटक ठाकुरजीको देखा करती थी। एक दिन विमलाने कहा—

विमला—गुरुजी! ये ठाकुरजी मुझे दे दीजिये।

गुरु—तुम क्या करोगी?

विमला—पूजन किया करूँगी। बातें किया करूँगी।

गुरु—तुम अभी कन्या हो। गुड्डे-गुड्डीका ब्याह खेला करोगी। फिर बड़ी हो जाओगी, तब तुम अपनी ससुराल चली जाओगी; ठाकुरजीकी पूजाका अवसर तुमको कभी न मिलेगा।

विमला—क्या कन्याका यही आदर्श है, गुरुजी?

गुरु—नहीं, कन्याका आदर्श तो दूसरा ही है।

विमला—वह कौन-सा?

गुरु—माता, पिता और भ्रातासे सद्व्यवहार रखना कन्याका प्रथम आदर्श है। गुरु तथा ईश्वरकी भक्ति रखना कन्याका दूसरा आदर्श है। पति तथा पुत्रकी सेवा करना उसका अन्तिम आदर्श है।

विमला—सबसे बड़ा आदर्श कन्याके लिये कौन-सा है?

गुरु—सबसे बड़ा आदर्श तो माता-पिता, भ्राता, गुरु-शिष्य, पति-पुत्र, पत्नी—सबके लिये एक ही है और वह है श्रीठाकुरजीकी भक्ति सीखना।

विमला—क्यों?

गुरु—ठाकुरजी ही संसारके स्वामी हैं। हर-एक जीव उनका नौकर है। जो नौकर अपने स्वामीकी सेवा नहीं करेगा, वह मेवा नहीं पायेगा। उसे कान पकड़कर निकाल दिया जायगा।

विमला—तो ठाकुरजीकी सेवा करना सबका प्रधान आदर्श है?

गुरु—हाँ, बेटी! यही सबका प्रधान आदर्श है। यदि तुम ईश्वरकी भक्त बनोगी तो तुम्हारे आचरण स्वयं धार्मिक रहेंगे। ईश्वरकी छविकी छटाका नाम धर्म है। धर्म यानी कर्तव्य।

विमला—तब तो, गुरुजी! मैं इसी सबसे बड़े आदर्शको मानूँगी; बस, ये ठाकुरजी मुझे दे दो।

गुरु—नहीं। ये तो मेरे ठाकुरजी हैं।

विमला—और मेरे ठाकुरजी?

गुरु—तुम्हारे ठाकुरजी कल आ जायेंगे।

विमला—कैसे?

गुरु—कल सुबह मेरे साथ नर्मदाजी स्नान करने चलना। पाताल फोड़कर, नदीके द्वारा तुम्हारे ठाकुरजी आयेंगे।

गुरुजीने सोचा था कि नर्मदामें गोल-मोल पत्थरके टुकड़े पड़े रहते हैं, उन्हींमेंसे एक उठाकर दे दूँगा।

अपने ठाकुरजीकी प्रतीक्षामें विमलाको अपार आनन्द हुआ। प्रातः दोनों हाथीपर चढ़कर नर्मदास्नानके लिये गये। गुरुजीने जो डुबकी मारी तो एक श्वेत पत्थरकी गोल मूर्ति उनके हाथमें थी।

राजकुमारी चिल्लायी! 'हमारे ठाकुरजी आ गये!'

गुरुजीने बाहर निकलकर ठाकुरजी दे दिये।

विमलाने अपने ठाकुरजीके लिये सोनेकी सन्दूकची बनवायी, रेशमी कपड़े बनवाये और जवाहराती जेवर बनवाये। रोज फूल और धूप-दीपके साथ पूजा करने लगी।

राजा और रानीने विमलाके उत्साहमें और भी योग दे दिया। जो-जो उसने माँगा, राजा-रानी सब प्रसन्नतापूर्वक देने लगे। आजकलके मूढ़ माता-पिताकी तरह उन्होंने कन्याका भक्तिविलास रोका नहीं। पुत्र हो या पुत्री, हरिभक्तिसे किसीको रोकना नहीं चाहिये। इससे बढ़कर कोई पाप ही नहीं है। रामप्रेम रोकना ही महापाप है। कन्या तो जीव है, पशु-पक्षीतक रामसे प्रेम करते हैं।

× × ×

विमला—गुरुजी! ठाकुरजी तो आपकी कृपासे मिल गये; परंतु इनका नाम क्या है?

गुरुजीने देखा कि कन्या बहुत सीधी है। सीधेको

'सिलबिल्ला' कहते हैं ग्रामीण भाषामें।

गुरु—तुम्हारे ठाकुरजीका नाम है 'सिलबिल्ले ठाकुर।'

विमला—बिसमिल्ले ठाकुर?

गुरु—वह तो फारसी भाषा हो गयी। सिलबिल्ले कहो।

विमला—सिलबिल्ले ठाकुरजी!

× × ×

एक दिन विमलाका विवाह हो गया। वह बारातके साथ ससुरालको चली। मार्गमें बारातने दोपहरी देखकर पड़ाव डाल दिया। राजकुमारीका पति पालकीके पास आया। राजकुमारीको अत्यन्त रूपवती देखकर बहुत प्रसन्न हुआ।

राजकुमार—इस सोनेकी सन्दूकचीमें क्या है?

राजकुमारी—ठाकुरजी!

राजकुमार—देखूँ।

राजकुमारीने चाबी लेकर ताला खोला। रेशमी कपड़ोंमें गद्दीपर पत्थरकी एक गोल बटिया रखी थी। राजकुमार हँसा। उसे नयी दुनियाकी हैवानी हवा लगी थी। ईश्वर कहाँ है और यदि है भी तो वह अजर-अमर सच्चिदानन्द व्यापक होगा और यह है कि नर्मदाकी बटिया। राजकुमारने कहा—'तुम बहुत सरल हो, राजकुमारी!'

इतना कहकर उसने ठाकुरजी उठा लिये। वहीं एक कुआँ था। हँसकर राजकुमारने उस ठाकुरजीको कुएँमें डाल दिया और चला गया।

× × ×

ससुराल पहुँचकर राजकुमारीने भोजन करना छोड़ दिया। केवल जल पीकर रहने लगी। हरदम ठाकुरजीका ध्यान। 'हाय! हमारे सिलबिल्ले ठाकुरजी कब मिलेंगे?' यही चिन्ता। ससुरालवालोंने सोचा कि घरकी यादसे बहू भोजन त्याग बैठी है। एक रातको वह खिड़कीके द्वारा महलसे बाहर हो गयी। भागती हुई उसी कुएँके पास जा पहुँची, जिसमें ठाकुरजी पड़े थे।

राजकुमारी रोने लगी। उसने पुकारा—'सिलबिल्ले!' आवश्यकतासे अधिक सीधे व्यक्तिको 'सिलबिल्ला' कहा जाता है देहाती भाषामें। बहुत सम्भव है कि ईश्वर भी आवश्यकतासे अधिक सीधा व्यक्तित्व रखते हों। लिहाजा कुएँमेंसे जवाब आया—'वाह! मुझे यहाँ छोड़ तुम कहाँ चली गयी थी?'

राजकुमारी—बाहर आ जाओ!

आवाज—तुम्हीं यहाँ आ जाओ।

राजकुमारी कुएँमें कूद पड़ी।

× × ×

विमलाने देखा कि कुएँमें पानीकी जगह फूल-ही-फूल भरे पड़े हैं और बजाय पत्थरके साक्षात् ठाकुरजी विराजमान हैं। पीताम्बर, वनमाला, मोहनमुरली, मधुर मुसकान!

विमला—सिलबिल्ले!

ठाकुरजी—कहो, सिलबिल्ली!

विमला—मैं उस ठाकुरजीके विरोधी घरमें अब न जाऊँगी।

ठाकुरजी—तो ठाकुरजीके माननेवाले घरमें चलोगी?

विमला—नहीं, मैं तो अब तुम्हारे ही साथ रहूँगी। तुम्हीं मेरे सब कुछ हो।

श्रीकृष्ण—विमले! तुम राधारानीकी 'सरलता' से उत्पन्न हो। संसारकी समस्त स्त्रियाँ शक्तिके विविध अंगोंसे उत्पन्न हैं। आजकलके भयानक कलियुगमें तुम-सी सरलकी गुजर नहीं हो सकती। सरलको लोग बेवकूफ समझते हैं। मजा यह कि हैं खुद बेवकूफ!

विमला—तुम्हारा घर कहाँ है?

श्रीकृष्ण—गोलोकमें!

विमला—वह कहाँ है?

श्रीकृष्ण—पृथ्वीके ऊपर चन्द्र, चन्द्रसे दूर सूर्य, सूर्यसे ज्योति, ज्योतिके बाद गोलोक है!

विमला—बहुत दूर है।

श्रीकृष्ण—क्षणभरमें पहुँच चलेंगे।

इतना कहकर भगवान्ने विमलाके सिरपर हाथ फेरा। हाथके साथ ही उसकी आत्मा निकल आयी।

दोनों आकाशमार्गसे चले। यहाँ अपनी एक कहानी छोड़ गये।

जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

साधकोंके प्रति—

[सच्चा आश्रय]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

किसी-न-किसीका आश्रय लेना मनुष्यमात्रका स्वभाव है। ऐसे तो जीवमात्र किसी-न-किसीका आश्रय लेना चाहता है, किसी-न-किसीको आधार बनाना चाहता है। ऐसा स्वभाव क्यों है? क्योंकि यह परमात्माका अंश है। अगर यह परमात्माका ही आश्रय ले तो फिर इसे दूसरा आश्रय लेनेकी जरूरत नहीं पड़ेगी, परंतु जबतक यह परमात्माका आश्रय नहीं लेता, तबतक यह अनेक आश्रय लेता रहता है। लेना तो चाहिये भगवान्‌का आश्रय, पर उस जगह दूसरी चीजका आश्रय ले लेता है। धनका आश्रय ले लेता है, परिवारका आश्रय ले लेता है, विद्याका आश्रय ले लेता है, योग्यताका आश्रय ले लेता है, बलका आश्रय ले लेता है, पर यह आश्रय टिकता नहीं।

आश्रय परमात्माका ही लेना चाहिये—यह बात समझनेमें ठीक दीखती है और मानते भी हैं, पर दूसरा आश्रय छोड़ते नहीं। यद्यपि दूसरा आश्रय छोड़नेमें आप पराधीन नहीं हैं, स्वाधीन हैं, परंतु दूसरेका विशेष आश्रय लेनेसे, उसका सुख पाते रहनेसे अपनेमें एक ऐसा वहम हो गया है कि इनका आश्रय छोड़नेपर हम कैसे रहेंगे, कैसे जीयेंगे? हमारा निर्वाह कैसे होगा? ऐसा भाव होनेसे अपनेमें यह कायरता आ गयी कि इनका आश्रय हम छोड़ नहीं सकते।

जब गाढ़ी नींद आती है, उस समय किसका आश्रय रहता है? किसीका आश्रय नहीं रहता, परमात्माका भी आश्रय नहीं रहता। उस अवस्थामें एक बेहोशी रहती है। बेहोशीमें संसारका आश्रय तो छूटता है, पर मूढ़ता (अज्ञान)-का आश्रय रहता है। यह जो वहम है कि संसारके आश्रयके बिना हम जी नहीं सकेंगे, तो फिर सुषुप्तिमें आप कैसे जीते हैं? सुषुप्तिमें संसारका आश्रय न रहनेपर भी आप रहते हैं। कृपा करके एक और बातकी तरफ आप ध्यान दें। संसारका आश्रय लेनेसे इतना सुख नहीं मिलता है, जितना सुख संसारका आश्रय छोड़नेसे नींदमें मिलता है। संसारका आश्रय छोड़नेसे जो सुख मिलता है, जो ताजगी मिलती है, जो काम करनेकी शक्तिका संचय होता है, वह संसारका आश्रय लेते हुए नहीं होता। शक्तिका संचय दूर रहा, उलटे शक्ति खर्च होती है। धन, परिवार, बुद्धि, योग्यता आदि किसीका भी आश्रय लेते रहनेसे आप बेचैन हो जाते हैं, थक जाते हैं, आपकी शक्ति क्षीण हो जाती है, फिर आप सबको छोड़कर सो जाते हैं। सोते-सोते आपमें पुनः शक्ति आ जाती है। इस प्रकार संसारका आश्रय छूटनेसे आपके पास बहुत विलक्षण ताकत आयेगी; और परमात्माका आश्रय लेनेसे ताकतका कोई पारावार नहीं रहेगा, इतनी असीम, अपार ताकत आयेगी कि फिर भय और चिन्ता रहेंगे ही नहीं। उसीके लिये कहा है—**'यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः'** (गीता ६। २२)। उससे बढ़कर कोई लाभ हुआ नहीं, है नहीं, होगा नहीं, हो सकता नहीं, परंतु वह नाशवान्‌का आश्रय छोड़नेसे ही मिलेगा।

आपसे गलती यह होती है कि जिसे आप नाशवान् मानते हैं, जानते हैं, उसका आश्रय नहीं छोड़ते। जप-ध्यान करते हैं, कीर्तन करते हैं, चिन्तन करते हैं, पर साथ-साथ नाशवान्‌का आश्रय भी रखते हैं। नाशवान् संसारका आश्रय सर्वथा छोड़े बिना परमात्माका आश्रय पूरा नहीं लिया जाता। पूरा आश्रय लिये बिना पूरी शक्ति नहीं मिलती। परमात्माकी तरफसे कोई कमी नहीं है। आप परमात्माका जितना आश्रय लेंगे, उतना आपको आश्वासन मिलेगा, शक्ति मिलेगी, लाभ होगा, परंतु संसारका आश्रय सर्वथा छोड़कर परमात्माके आश्रित हो जायँगे तो अपार बल मिलेगा।

वे परमात्मा कहाँ हैं—इसमें एक बात बतायें कि वे सबके हृदयमें हैं—**'सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टः'** (गीता १५। १५); **'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति'** (गीता १८। ६१)। वे सम्पूर्ण जीवोंके भीतर हैं; परंतु यह बाहरकी तरफ ही देखता है, भीतरकी तरफ देखता ही नहीं। आप अपनेको मानते हैं कि मैं हूँ, उस 'मैं'-पनका आश्रय आत्मा है और आत्माका भी आश्रय परमात्मा है—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५। ७)।

आपका आत्मा उस परमात्माका अंश है। आप एक क्षेत्रमें हैं और आपके अंशी परमात्मा सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें हैं—**'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रषु भारत'** (गीता १३।२)। गोपिकाओंने कहा है—**'न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।'** आप केवल यशोदा-नन्दन ही नहीं हैं, प्रत्युत जितने भी शरीरधारी हैं, चाहे वे स्थावर हों, जंगम हों, देवता हों, राक्षस हों, भूत-प्रेत-पिशाच हों, नरकोंमें रहनेवाले हों, भजन-ध्यान करनेवाले हों, तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त हों, भगवत्प्रेमी हों, उन सबकी अन्तरात्माके द्रष्टा आप हैं। पर ऐसा होते हुए आप यहाँ कैसे आ गये?

विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले॥

(श्रीमद्भा० १०।३१।४)

'ब्रह्माजीने प्रार्थना की तो आप प्रकट हुए। किसलिये प्रार्थना की? **'विश्वगुप्तये'** अर्थात् संसारकी रक्षा करनेके लिये; क्योंकि संसारकी रक्षा आप ही कर सकते हैं और किसीमें ताकत नहीं है करनेकी। आप इन यादवोंके कुलमें प्रकट हुए हैं—**'उदेयिवान्'**, पैदा नहीं हुए हैं। जैसे सूर्यका उदय होता है तो ऐसा कोई नहीं कहता कि सूर्य पैदा हो गया; क्योंकि उदय होनेसे पहले भी सूर्य है। जब वह हमारे सामने आ जाता है, तब उसका उदय होना कहते हैं। ऐसे ही वे परमात्मा प्रकट होते हैं, हमारे शरीरोंकी तरह जन्म नहीं लेते।'

मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीर, व्यक्ति, वस्तुएँ, पदार्थ, रुपये-पैसे आदि कोई भी आपका नहीं है, आपके साथ रहता नहीं है, प्रतिक्षण आपसे अलग हो रहा है, फिर भी आप इनका आश्रय लेते हैं। ये मन, बुद्धि आदि तो आपके आश्रित रहते हैं, पर अपने आश्रित रहनेवाली वस्तुओंका आप आश्रय लेते हैं, अपने उद्योगसे पैदा होनेवाले धनका आश्रय लेते हैं—यह गलती करते हैं। इनका आश्रय न लेकर एक भगवान्का आश्रय लें—**'मामेकं शरणं व्रज'** (गीता १८।६६)। **'तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥'** (गीता १८।६२)—जो सबके हृदयमें विराजमान है, उस ईश्वरकी ही सर्वभावसे शरण ले लें। उसकी कृपासे परमशान्ति (संसारसे सर्वथा उपरति) और अविनाशी परमपदकी प्राप्ति हो जायगी। भगवान्का आश्रय लेनेमें हम सब-के-सब स्वतन्त्र हैं, कोई भी पराधीन नहीं है। उनका आश्रय लेनेमें कोई अयोग्य भी नहीं है।

आप इसी क्षण परमात्माका आश्रय ले सकते हैं; क्योंकि वह आपके पास है और आप उसके पास हैं। वह आपसे अलग नहीं हो सकता और आप उससे अलग नहीं हो सकते। अगर वह आपसे अलग हो जाय तो ईश्वर दो हो जायँगे, एक वह और एक आप। उसकी जो अखण्डता है, सर्वोपरि भाव है, व्यापकता है, वह खण्डित हो जायगी। आपसे अलग होनेपर उसकी महत्ता रहेगी ही नहीं। अतः वह आपसे अलग हो ही नहीं सकता। आप भी उससे अलग नहीं हो सकते। हाँ, आप अपनेको उससे अलग मान सकते हैं, पर अलग हो नहीं सकते। ऐसे ही आप अपनेको संसारके आश्रित मान सकते हैं, पर आश्रित हो नहीं सकते। आपने शरीरका आश्रय लिया, धनका आश्रय लिया, पर क्या आप इनके आश्रित रह सकते हैं? इनके आश्रित कोई रह सकता ही नहीं। फिर भी आप इनका आश्रय मान लेते हैं, यह गलती करते हैं; क्योंकि यह निभनेवाला नहीं है। इनका साथ रहनेवाला नहीं है, ये सब छूटनेवाले हैं। अतः इनसे विमुख होकर एक भगवान्का ही आश्रय लें, औरका आश्रय मत लें। धनका सदुपयोग करें, सब काम करें, पर आश्रय एक भगवान्का ही रखें। सन्तोंने कहा है—

पतिव्रता रहे पतिके पासा। यों साहिबके ढिग रहे दासा॥

जैसे पतिव्रता पतिके आश्रित रहती है, ऐसे ही भक्त भगवान्के आश्रित रहते हैं। जगज्जननी जानकीजी सास-ससुरको माता-पितासे भी अधिक आदर देती थीं; परंतु जब भगवान् वनवासके लिये पधारे, तब जानकीजीने उन्हें भी छोड़ दिया। दशरथजीने यहाँतक कह दिया कि अगर जनकराजदुलारी यहाँ रह जाय तो मेरे प्राण रह सकते हैं, फिर भी वे नहीं रहीं। वे कहती हैं कि 'मैं रह सकती ही नहीं। चाँदनी चन्द्रमाको छोड़कर कैसे रह जाय? सूर्यकी प्रभा सूर्यको छोड़कर कैसे रह जाय? शरीरकी छाया शरीरको छोड़कर कैसे रह जाय?' ऐसे ही कोई भी जीव परमात्मासे अलग रह सकता ही नहीं; परंतु यह परमात्माका आश्रय न लेकर अलग होनेवाले

(संसार)-का आश्रय लेता है, इसीसे यह दुःख पा रहा है। अगर यह अलग होनेवालेका आश्रय न ले और सदा साथ रहनेवालेका आश्रय ले ले तो निहाल हो जाय। आप अभी यह निश्चय कर लें कि हम संसारका आश्रय नहीं लेंगे। धन कमायेंगे, रखेंगे, पर उसका आश्रय नहीं लेंगे। संसारका काम करेंगे, पर संसारका आश्रय नहीं लेंगे। इतने दिन संसारसे लिया है, अब उसका कर्जा चुकानेके लिये काम करना है, पर आश्रय नहीं लेना है। संसार आश्रय लेनेके योग्य है ही नहीं; क्योंकि यह एक क्षण भी स्थिर नहीं रहता। यह इतनी तेजीसे बदलता है कि इसे दुबारा नहीं देख सकते। केवल बदलनेके पुंजका नाम संसार है। जैसे भगवान् कृपाकी मूर्ति हैं,* ऐसे ही यह संसार बदलनेकी मूर्ति है। बदलनेके सिवाय इसमें और कुछ भी नहीं है। ऐसे संसारका आश्रय आपने मान रखा है। अब इससे विमुख होकर केवल भगवान्के चरणोंका आश्रय ले लें और अभी ले लें, अभी।

'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई', 'एक बानि करुनानिधानकी। सो प्रिय जाकें गति न आनकी।'—

दूसरेका आश्रय न लें। सर्वभावसे भगवान्की शरण हो जायँ—**'तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन'** (गीता १८।६२), **'स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन'** (गीता १५।१९), ***'सर्बभाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ'*** (मानस ७।८७क)। वास्तवमें भगवान्के साथ आपका स्वतःसिद्ध घनिष्ठ सम्बन्ध है। बदलनेवालेके साथ सम्बन्ध न जोड़ें—इतनी ही बात है।

मेरा महत्त्व मेरे प्रभुकी दृष्टिमें है

जीवनके सुखदायी अनुभवोंमेंसे ही मैं इस सत्यको भलीभाँति अनुभव कर रहा हूँ कि मेरे प्रभु मेरी कभी भी उपेक्षा नहीं करते, कभी भी मुझे अपनी दृष्टिसे ओझल नहीं होने देते। जीवनमें ऐसे अवसर आ सकते हैं जब मुझे यह प्रतीत होता है कि मेरे प्रयत्न, मेरे शुभ प्रयास, मेरा परिश्रम, मेरी आकांक्षाएँ दूसरोंकी दृष्टिमें नगण्य हैं, अप्रशंसनीय हैं। ऐसे ही अवसरोंपर मैं यह अनुभव करता हूँ कि प्रभुकी दृष्टिमें मैं हूँ—बस, यही सचमुच महत्त्वपूर्ण है, अन्य तो सब कुछ गौण है।

जब मैं स्वयंको अयोग्य, असमर्थ, तुच्छ एवं नगण्य अनुभव करने लगता हूँ, तब हृदयकी करुण-भाषाद्वारा प्रभुके अत्यधिक निकट सम्पर्कमें अपनेको अनुभवकर उनसे अपने सम्पूर्ण प्रयत्नों एवं सम्पूर्ण मानसिक प्रेरणाओंको उनकी असीम कृपासे आप्लावित कर देनेके लिये कहता हूँ; क्योंकि मैं जानता हूँ कि मेरा महत्त्व केवल उन्हींकी दृष्टिमें है और केवल वे ही मेरे प्राणोंकी झंकृतिको समझ सकते हैं, केवल वे ही उसपर ध्यान देंगे।

किसीने कहा है कि जब कोई वस्तु जलमें डुबायी जाती है, तब वह जलद्वारा आत्मसात् होनेमें जलको कोई अतिरिक्त कष्ट नहीं देती। जैसे किसी भी आकार-प्रकारकी कोई भी वस्तु महासागरमें गिरती है, तो जल तत्क्षण स्वाभाविक ही चारों ओरसे उसे आवृत कर लेता है—उसे कोई अतिरिक्त कष्ट नहीं होता। इसीलिये मैं यह जानता हूँ कि मेरा अस्तित्व प्रभुके स्नेह-सागरमें डूब गया है। उन्हें मुझे अपने सहज स्नेहद्वारा आत्मसात् करनेमें तथा अपने समस्त दैवी गुणोंसे अभिभूत करनेमें कोई अतिरिक्त कष्ट नहीं है।

इस तथ्यको समझकर मैं यह जानता हूँ कि प्रभुकी मुझपर अनन्त कृपा है, मेरे कार्योंमें उन्हींकी प्रेरणा है, मेरी आकांक्षाओंमें उनकी कृपाका ही बल है, मेरे उद्देश्योंको उनकी कृपाका ही सम्बल प्राप्त है।

मैं प्रसन्न हूँ; क्योंकि मैं जानता हूँ कि मेरा महत्त्व केवल मेरे प्रभुकी दृष्टिमें है।—श्रीकुंजबिहारीजी

* 'प्रभु मूरति कृपामई है' (विनय-पत्रिका १७०।७)।

'जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल'

(डॉ० श्रीराधानन्दसिंहजी, एम० ए०, पी-एच० डी०, एल-एल० बी०, बी० एड०)

श्रीरामचरितमानस एक ऐसा दिव्य ग्रन्थ है, जिसमें श्रुतियोंका सार-सिद्धान्त अधिष्ठित है। श्रुति षडंगयुक्त है अर्थात् इसके छः अंग माने गये हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। ज्योतिःशास्त्र वेदका नेत्र है। कालनिरूपणकी दृष्टिसे यह भारतीय प्रज्ञा और मनीषाका शीर्षस्थ शास्त्र है।

गोस्वामी तुलसीदासजीने मानसमें रामकथानिरूपणमें यथास्थान ज्योतिषको दर्शाया है। उन्होंने मानसके अवतार-प्रसंगमें ज्योतिषका विनियोग करते हुए कहा है—

जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल॥
नौमी तिथि मधु मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता॥

(रा०च०मा० १।१९०, १।१९१।१)

अर्थात् योग, लग्न, ग्रह, दिन और तिथि सभी अनुकूल हो गये। जड़ और चेतन (चराचरमात्र) हर्षसे भर गये। उस समय नवमी तिथि थी, पवित्र चैत्रमास था, पवित्र शुक्लपक्ष था और हरिको प्रिय अभिजित् (मुहूर्त) था। ज्योतिषमें तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण—ये पाँच मिलकर पंचांग होता है। यहाँ 'करण' और 'नक्षत्र' को 'सकल' शब्दमें समाहित कर दिया गया है।

आदिकवि वाल्मीकिने जन्मकालकी स्थितिको और स्पष्ट करते हुए कहा है—

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ॥
नक्षत्रेऽदितिदैवत्यै स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह॥
प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम्।
कौसल्याजनयद् रामं दिव्यलक्षणसंयुतम्॥

(वाल्मीकीय रामायण १।१८।८—१०)

अर्थात् यज्ञ-समाप्तिके पश्चात् जब छः ऋतुएँ बीत गयीं, तब बारहवें मासमें चैत्रके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको पुनर्वसु नक्षत्र एवं कर्क लग्नमें कौसल्यादेवीने दिव्य लक्षणोंसे युक्त, सर्वलोकवन्दित जगदीश्वर श्रीरामको जन्म दिया। उस समय (सूर्य, मंगल, शनि, गुरु और शुक्र—ये) पाँच ग्रह अपने उच्च स्थानमें विद्यमान थे तथा लग्नमें चन्द्रमाके साथ बृहस्पति विराजमान थे।

इन पाँच ग्रहोंके उच्च स्थानमें विद्यमान होने-सम्बन्धी ज्योतिषीय मान्यता यह है कि राजसत्ताके स्वामी सूर्य मेषके, शौर्यके स्वामी मंगल मकरके, विवेकके स्वामी गुरु कर्क राशिके, राजश्रीके स्वामी शुक्र मीनके और स्थिरताके स्वामी शनि तुलाके थे। जिसका एक ग्रह उच्च स्थानमें हो, उसके सभी अरिष्टोंका नाश होता है। जिनके दो ग्रह उच्चके हों, वह सामन्त, तीन उच्च ग्रहोंवाला महीपति, चार ग्रहोंवाला सम्राट् और जिसके पाँचों ग्रह उच्चके हों, वह त्रैलोक्यनायक होता है। सूर्यके उच्च होनेसे मनुष्य सेनापति होता है, मंगल उच्च होनेसे वनमें राजा, गुरु उच्च होनेसे धनी और राज्याधिपति, शुक्र उच्च होनेसे राजश्रीको प्राप्त और शनिके उच्च होनेसे राजाके तुल्य होता है। अभिजित् मुहूर्तमें जन्म होनेसे मनुष्य राजा होता है। चैत्रमासमें दिनमान और रात्रिमान सम-समान होता है, जिससे मध्याह्नकालमें अभिजित् मुहूर्तका योग बनता है। वाल्मीकीय और अध्यात्म आदि रामायणोंके अनुसार श्रीरामावतार सदा पुनर्वसु नक्षत्रमें ही होता है। मधुमास, शुक्लपक्ष, नवमी तिथि, मध्याह्नकाल और अभिजित् मुहूर्त—ये सब हरिको प्रिय हैं—***'हरिप्रीता'***। शास्त्रानुसार जब-जब श्रीरामावतार होता है, तब-तब यही योग रहता है। अतः उक्त दशा शास्त्रीय, पारम्परिक और प्रामाणिक है।

सामान्यतः नवमी तिथि, पुनर्वसु नक्षत्र और मेषके सूर्य एकत्र नहीं होते, परंतु मानसकी उद्घोषणा है—

'सकल भए अनुकूल।' तात्पर्य यह है कि जो ग्रह-नक्षत्रादि प्रतिकूल अवस्थामें थे, वे भी उस समय अनुकूल दिशामें गतिमान हो गये; क्योंकि ***'राम जनम सुखमूल।'*** गोस्वामी तुलसीदासजीने दिव्य राम-जन्मका वर्णन करते हुए कहा है कि ब्रह्मादि देवता तो गतिशील हो गये, परंतु परब्रह्म श्रीरामके दिव्य आविर्भावको देखकर अपने कुलको धन्य मानकर अवधपुरीके ऊपर सूर्य एक मासतक ठहर गये। अपनी गति भूल गये। आश्चर्य तो यह कि किसीको पता नहीं चला। गोस्वामीजीने दो बार लिखा—

मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ।

(रा०च०मा० १।१९५)

यह रहस्य काहूँ नहिं जाना।

(रा०च०मा० १।१९६।१)

शिवजीको भी इतना ही ज्ञात हुआ—***'मास दिवस कर दिवस भा।'*** कैसे और किस प्रकार हुआ? वे नहीं जान सके। तब आजके ज्योतिषियोंके लिये श्रीरामजन्मके ग्रह-नक्षत्रादिका विश्लेषण कहाँतक सम्भव है? गोस्वामीजीने तो केवल एक सूर्य ग्रहकी स्थितिका वर्णन किया है, जो मूल कालनिर्धारक है, अन्यकी गतिका क्या कहना?

महर्षि भृगुने रामावतारके फलादेशको स्पष्ट करते हुए कहा है—कर्कके चन्द्र और गुरु, कन्याके राहु, तुलाके शनि, मकरके मंगल, वृषके बुध, मेषके सूर्य, मीनके शुक्र और केतु—यह वेदसागरयोग है। हे भार्गव! वेदसागरयोगमें उत्पन्न होनेवाला, पूर्वजन्ममें पूर्णब्रह्म, स्वयंकर्ता, स्वयंप्रकाश, निरंजन, निर्गुण, निर्विकल्प, निरीह, सच्चिदात्मा, गिराज्ञानगोऽतीत, इच्छानुकूल स्वरूप धारण करनेवाला था। बिना घ्राणके सूँघता था, बिना पैरके चलता था।

मानसके श्रीराम उपर्युक्त सभी विशेषणोंसे युक्त परब्रह्म परमात्मा हैं। इन सभी विशेषणोंका उल्लेख मानसमें हुआ है, जिनमें कुछ अधोलिखित हैं—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥

(रा०च०मा० १।१९८)

'बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।' (रा०च०मा० १।११८।५)

'ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥' (रा०च०मा० १।११८।७)

'भुवनेस्वर कालहु कर काला॥' (रा०च०मा० ५।३९।१)

अतः अखिलब्रह्माण्डनायक परात्पर परब्रह्म श्रीरामकी अवतरण-लीलाका ज्योतिषीय विश्लेषण इन्हीं तथ्योंके आधारपर ही किया जाना चाहिये; ज्योतिष काल-विधायक शास्त्र है। कालातीत भगवान् ही कालके रूपमें व्यक्त होते हैं। वह अव्यक्त, निर्गुण, निराकार अनन्त ब्रह्म महाकालके रूपमें विश्वको उत्पन्न करता है, पालन करता है तथा अन्तमें समस्त प्रपंचको अपनेमें लीन कर लेता है।

कालका दूसरा रूप पल, विपल, घटी, दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, सम्वत्सर, युग, मन्वन्तर तथा कल्प आदिके रूपमें विभाजित होकर अभिव्यक्त होता है।

गोस्वामी तुलसीदासजी कालरूप भगवान्के दोनों स्वरूपोंको समंजित करते हुए लंकाकाण्डके मंगलाचरणमें कहते हैं—

लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु कोदंड॥

(रा०च०मा० लंका० मंगलाचरण)

अर्थात् लव, निमेष, परमाणु, युग, वर्ष और कल्प ही जिनके प्रचण्ड बाण हैं और काल जिनका धनुष है, उन श्रीरामजीको रे मना! तू क्यों नहीं भजता?

इस दोहेसे स्पष्ट है कि कालका दूसरा रूप, जो कलनात्मक है—लव, निमेष, परमाणु, युग आदि श्रीराम इसके संचालक और नियामक हैं। यहाँ काल कोदण्ड (धनुष-बाण) है। अर्थात् श्रीराम कालके धारक और संचालक हैं। कालको कोदण्डसमान गुणोंके कारण

काल कहा गया है। धनुष और बाण दोनों कालरूप ही हैं। अन्तर यह है कि एक अचल रहकर दूसरेको संचालित कर देता है। गोस्वामीजीने इसका यथार्थ रूप रावण-वधमें प्रकट किया—

खैंचि सरासन श्रवन लगि छाड़े सर एकतीस।
रघुनायक सायक चले मानहुँ काल फनीस॥

(रा०च०मा० ६।१०२)

अर्थात् कानोंतक धनुषको खींचकर श्रीरघुनाथजीने इकतीस बाण छोड़े। वे श्रीरामचन्द्रजीके बाण ऐसे चले मानों कालसर्प हों। यही गतिशीलता, परिवर्तनशीलता जगत्का शाश्वत नियम है।

इस ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा, मनुष्य और सूक्ष्म जन्तुओंकी आयु क्रमशः युग और कल्पसे, दिन, महीना और वर्षसे तथा लव-निमेषसे गिनी जाती है। इसीमें सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्रादिका उदय-अस्त होता रहता है। असंख्य वैज्ञानिकों, ज्योतिर्विदोंके काल-विश्लेषणपर गवेषणात्मक निष्कर्षोंके पश्चात् भी यह आजतक एक अबूझ पहेली है।

सम्पूर्ण ज्योतिःशास्त्र कालपर आश्रित है। यहाँ काल सर्वप्रमुख है। सूर्यसिद्धान्तमें आया है काल लोकोंका अन्त करनेवाला है, परंतु गोस्वामी तुलसीदासजीने मानसके लंकाकाण्डके मंगलाचरणमें श्रीरामको कालरूप मतवाले हाथीके लिये सिंहके सदृश बताया है—**'कालमत्तेभसिंहम्'** अर्थात् यहाँ श्रीरामको कालके संहारकके रूपमें स्मरण किया गया है।

श्रीरामचरितमानसमें अन्यत्र भी श्रीरामका इस रूपमें वर्णन मिलता है—

काल ब्याल कर भच्छक जोई। सपनेहुँ समर कि जीतिअ सोई॥

(रा०च०मा० ६।५६।८)

जाकें डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥

(रा०च०मा० ५।२२।९)

उमा काल मर जाकीं ईछा। सो प्रभु जन कर प्रीति परीछा॥

(रा०च०मा० ६।१०२।३)

अतः मानसमें श्रीराम कालके नियन्ता हैं। तभी तो स्वयंको अमर समझनेवाला रावण श्रीरामके बाणोंसे विद्ध होकर मृत्युका ग्रास बन जाता है। वहीं श्रीरामके अनन्य पदकमलसेवक काकभुशुण्डिजीके बारेमें गरुड़जी कहते हैं—

नाथ सुना मैं अस सिव पाहीं। महा प्रलयहुँ नास तव नाहीं॥

(रा०च०मा० ७।९४।५)

ज्योतिषीय कालगणनाकी दृष्टिसे ब्रह्माके एक दिन बीतनेपर प्रलय होता है और ब्रह्माकी सौ वर्षकी आयु बीतनेपर जो प्रलय होता है, उसका नाम महाप्रलय है। इस महाप्रलयमें भी काकभुशुण्डिजी नीलगिरिपर निवास करते हैं; क्योंकि कालके भी महाकाल भगवान् श्रीरामका वरदान था—

कबहूँ काल न ब्यापिहि तोही। सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही॥

(रा०च०मा० ७।८८।१)

अतः गीतामें उल्लिखित गणना करनेवालों (ज्योतिषियों)-में काल मैं हूँ—**'कालः कलयतामहम्'** (गीता १०।३०) तथा **'अहमेवाक्षयः कालः'** (गीता १०।३३) मैं अक्षयकाल अर्थात् कालका भी महाकाल हूँ। इन दोनों रूपोंका समन्वितरूप मानसमें वर्णित है।

दूसरी ओर कालप्रभावका वर्णन करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—

अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जगु काल कलेवा॥
अंड कटाह अमित लयकारी। कालु सदा दुरतिक्रम भारी॥

(रा०च०मा० ७।९४।७-८)

अर्थात् काल असंख्य ब्रह्माण्डोंका अनायास ही भक्षण कर लेता है। निष्कर्षतः जीव इसी कालचक्रमें जन्म-जन्मान्तर और कल्प-कल्पान्तर भ्रमित होता रहता है। अतः न केवल ज्योतिषीय ग्रह-नक्षत्रदोषादिके शमनार्थ वरन् युग-युगान्तर और लोक-लोकान्तरके पाप-ताप-संतापसे विमुक्तिहेतु करुणानिधान भगवान् श्रीरामके दिव्य नामके साथ उनके चरणारविन्दोंका पावन स्मरण (भजन) ही एकमात्र श्रीरामभक्त्यात्मक सन्निधान है।

जैसा बीज, वैसा वृक्ष

(डॉ० श्री बी० के० शर्माजी)

मनुष्य जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त मनसे, वाणीसे एवं शरीरसे कर्म करता रहता है। कर्मका फल तीन तरहका होता है—अच्छा, बुरा और मिला-जुला। जिस परिस्थितिको हम चाहते हैं वह अच्छा कर्मफल है, जिसको हम नहीं चाहते वह बुरा कर्मफल है और जिसमें कुछ अच्छा और कुछ बुरा भाग है, वह मिला-जुला कर्मफल है। फलकी इच्छा रखनेवालेको समय-समयपर तीनों ही फल मिलते हैं, कर्मफलका त्याग करनेवालोंको नहीं। हम जितने भी कर्म करते हैं, वे सब प्रकृतिके द्वारा अर्थात् प्रकृतिके कार्य—शरीर, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धिके द्वारा ही होते हैं तथा फलस्वरूप परिस्थिति भी प्रकृतिके द्वारा ही बनती है। इसलिये कर्मोंका और उनके फलोंका सम्बन्ध केवल प्रकृतिके साथ है। स्वयंसे (चेतन स्वरूप) इनका सम्बन्ध नहीं है। इसलिये जब हम उनसे सम्बन्ध तोड़ लेते हैं तो फिर हम भोगी नहीं होते, अपितु त्यागी बन जाते हैं। त्यागी अपने लिये कुछ नहीं करते, उनको यह विवेक रहता है कि अपना जो सत्स्वरूप है, उसके लिये किसी भी क्रिया और वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। वह सबके हितमें ही अपना हित मानता है तब वह स्वतः **'सर्वभूतहिते रताः'** हो जाता है। फिर उसके स्थूल शरीरसे होनेवाली क्रियाएँ, सूक्ष्म-शरीरसे होनेवाला परहित-चिन्तन और कारण शरीरसे होनेवाली स्थिरता—तीनों ही संसारके प्राणियोंके हितके लिये होती है। कर्मयोगी निष्कामभावसे कर्म करता हुआ फलके साथ सम्बन्ध नहीं रखता, वह ममता और अहंकाररहित हो जाता है, **'निर्ममो निरहङ्कारः'** (गीता २।७१)।

कर्म तीन प्रकारके होते हैं—क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध। अभी वर्तमानमें जो कर्म किये जाते हैं, वे क्रियमाण कर्म हैं। वर्तमानसे पहले इसी जन्ममें किये हुए अथवा पहलेके अनेक जन्मोंमें किये हुए जो कर्म हैं, वे संचित कर्म हैं और संचित कर्मोंमेंसे जो कर्म फल देनेके लिये हमारे सामने हैं, वे प्रारब्ध कर्म हैं। क्रियमाण कर्म दो तरहके हैं, शास्त्रोंमें कहे हुए-के अनुसार जो कर्म हम करते हैं, वे शुभ कर्म हैं और शास्त्रोंके विपरीत अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, आसक्तिको लेकर जो कर्म किये जाते हैं, वे अशुभ कर्म हैं। मनुष्य शुभ और अशुभ कर्मोंके करनेका निर्णय लेनेके लिये पूर्ण स्वतन्त्र है, लेकिन जब उसे शास्त्रोंके विपरीत कार्य करनेपर एक बुरी परिस्थितिका सामना करना पड़ता है, तब वह इसके लिये किसी और शक्तिपर दोषारोपण करने लग जाता है और भूल जाता है कि इस परिस्थितिके लिये भी वह स्वयं ही उत्तरदायी है और कोई नहीं।

गीतामें भगवान्‌ने सम्पूर्ण कार्योंकी सफलताके लिये पाँच कारण बताये हैं। उसमें अधिष्ठान, कर्ता, अनेक प्रकारके करण, विविध प्रकारकी अलग-अलग चेष्टाएँ एवं पाँचवाँ कारण दैव (प्रारब्ध) है—

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्॥
(१८।१४)

मनुष्य (कर्ता) जब कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों तथा मन, बुद्धि और अहंकार (करण)-द्वारा अपने शरीर (अधिष्ठान)-से अनेक विधियों (चेष्टा)-द्वारा जो कर्म करता है, तब उस कर्मकी सफलताके लिये मनुष्यके अथक प्रयासोंके साथ ही भगवान्‌ने पाँचवाँ कारण दैव (प्रारब्ध) बताया है। जैसा कि पहले बताया गया है कि हमने जैसे शुभ और अशुभ कर्म किये हैं, उनका संस्कार हमारे अन्तःकरणमें पड़ता है और हमारे ही संचित कर्म प्रारब्धरूपसे हमारे सामने फलरूपमें आ जाते हैं। अनुकूल परिस्थिति आनेपर इसका सारा श्रेय हम अपने आपको देते हैं। अतः कभी-कभी बहुत मेहनत करनेपर भी, जब प्रतिकूल परिस्थिति आ जाती है, तब हम इसके लिये किसी अन्यको दोषी मानते हैं, जबकि इस सबके

लिये हमारे वर्तमानके या भूतकालके किये हुए कर्म ही उत्तरदायी हैं। इसीलिये अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितिमें हमें समान भाव अपनाना चाहिये और कर्ताभावसे ऊपर उठकर प्रत्येक परिस्थितिमें ईश्वरको धन्यवाद देना चाहिये।

अतः हमें प्रत्येक पल बड़ी ही सावधानीसे अपने सभी नियत कार्योंको बिना किसी कर्तापनसे और बिना फलकी इच्छासे, पूर्ण निष्काम-भावसे, ममता और आसक्तिसे रहित होकर केवल संसारके हितको ध्यानमें रखते हुए एवं ईश्वरद्वारा बनाये गये उसके संसारकी व्यवस्थाको सुचारु रूपसे चलानेमें अपना कुछ योगदान देते हुए जीवनयापन करना है। कार्यकी सफलता और विफलतामें समान भाव रखते हुए प्रतिकूल और अनुकूल परिस्थिति—दोनों ही हमारे कर्मफलरूपमें ईश्वरकी देन हैं और दोनों ही हमारे हितमें हैं—इस तरहसे समझते हुए इस संसार-यात्राको पूरा करते हुए इससे मुक्त होनेका प्रयत्न करते रहना चाहिये।

गीतामें भगवान्‌ने कहा है कि जो पुरुष सम्पूर्ण कर्मोंको सब प्रकारसे प्रकृतिके द्वारा ही किये जाते हुए देखता है और आत्माको अकर्ता देखता है, वही यथार्थ देखता है—

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति॥

(१३। २९)

अतः ईश्वर सभी प्राणियोंके हृदयमें स्थित रहते हुए अपनी मायासे हमारे ही किये हुए कर्मोंके अनुसार हमें इस संसारमें भ्रमण करवाते रहते हैं, अतः कर्मकी सफलता और असफलताके लिये अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितिके लिये हम स्वयं ही उत्तरदायी हैं, इसके लिये किसी औरको दोष देनेके स्थानपर केवल आत्मनिरीक्षण करें और प्रत्येक कर्मको करनेसे पहले यह भलीभाँति सोच लें कि जैसा बीज हम धरतीमें डालेंगे, उसी तरहका वृक्ष उत्पन्न होगा। अतः हम जैसे कर्म करेंगे और हमने किये थे, उसी तरहका परिणाम हमें मिलेगा।

भक्त पथिक

(श्रीरामदयालजी)

छोटा-सा गाँव था रामसर। चारों ओर मनोरम प्राकृतिक वातावरण। गाँवसे बाहर कुछ ही दूर एक तालाब था और उसके चारों ओर बड़, पीपल, नीम आदि कई घने वृक्षोंके समूह। कुछ ही दिन हुए एक संत उधर आये और मनोरम पूर्णतः शान्त वातावरणको देखकर वहीं एक ओर सघन वृक्षोंकी छाँवमें अपना आसन लगा लिया।

बस, उसी दिनसे नित्य प्रातः श्रीगीताजीके श्लोकोंका सस्वर पाठ, मधुर स्वरमें भजन और फिर भावपूर्ण स्वरमें श्रीहरिनाम-संकीर्तनकी मनको छू लेनेवाली स्वरलहरी गाँवतक पहुँचने लगी। प्रातःकालीन सौम्य शान्त वातावरणमें हरि, राम, कृष्ण भगवन्नामकी पावन धारा गाँवमें बहने लगी।

गाँवके स्त्री-पुरुष भी प्रातः ही पहुँचकर गीतापाठका लाभ प्राप्त करने लगे। गीताके कुछ श्लोक अर्थसहित समझाये जाते, फिर भजन और अन्तमें सामूहिक हरिसंकीर्तन करके इस सत्संग-सभाका समापनकर संत नेत्र मूँदकर शान्त, मौन एवं स्थिर बैठे रहते। संत सहज, सरल, शान्त स्वभावके अधिकतर मौन रहनेवाले थे, परंतु गाँववालोंको गीता-अध्ययन एवं हरिकीर्तनके लिये प्रेरित करते थे।

संतकी ही प्रेरणासे गाँवके युवक, किशोर शामको भी एकत्रित होने लगे थे। इस युवा, बाल-सभामें संत विद्याध्ययन, सदाचार, सनातन संस्कृति और विवेक विचारपूर्वक आत्ममन्थनके महत्त्वपर प्रकाश डालते। साथमें महापुरुषोंकी जीवनी, उनके उच्च आदर्श चरितपर

भी प्रेरणास्पद प्रकाश डालते हुए युवकों एवं बालकोंको अपने जीवनमें उच्च आदर्शोंकी स्थापनाहेतु प्रेरणा देते रहते थे।

प्रातः और सायंके इस सामूहिक कार्यक्रमके अतिरिक्त दिनमें या रात्रिमें किसी भी समय उनके ध्यान, उपासनामें व्यवधान न डालनेहेतु उन्होंने सभीसे विनम्र स्वरमें अनुरोध किया हुआ था। कुछ श्रद्धालु भक्तोंद्वारा वहाँ एक साफ-सुथरी झोपड़ी बनाकर उसके भीतर-बाहर गोबर-मिट्टीसे लिपाईकर साफ-सफाईकी व्यवस्था कर दी थी।

लगभग चार वर्षोंसे यह कार्यक्रम अबाधगतिसे चल रहा था। गाँवके वातावरणमें सहज सुधार हुआ था। लड़ाई-झगड़े, वैर-विरोध प्रायः सब शान्त हो गये थे। सभी प्रेमसे रहकर सुख-दुःखमें परस्पर यथाशक्ति सहयोग करते थे। परस्परके ईर्ष्या-द्वेष, निन्दा-चुगलीके स्थानपर महापुरुषोंके उज्ज्वल जीवन-चरित्र एवं श्रीराम, कृष्णकी कथा, लीला-चरित्रोंकी पावन चर्चाएँ होती रहती थीं।

× × ×

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५।२९)

जो भी कोई पुरुष पारिवारिक, सामाजिक कर्तव्य कर्मोंका, लोकोपकारक कर्मोंका, यज्ञ, दान, तपादि कर्मोंका भोक्ता मुझ सर्वलोकोंके स्वामी, सबके सुस्नेही परमात्माको ही जानता हुआ अपने सब कर्म मेरी सेवाके निमित्त ही निःस्वार्थ भावसे करता है, वह पुरुष शाश्वत शान्तिको प्राप्त कर लेता है। भगवान्ने आगे (१८।४६)-में भी कहा है—'**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः**' अपने यथोचित नियत कर्तव्य कर्मोंद्वारा उस परमात्माकी सेवाकर मानव सिद्धिको प्राप्त कर लेता है। फलासक्तिरहित कर्म भी उपासना है, तपस्या है।

नित्य नियमानुसार गीतावाचनमें पंचम अध्यायका समापनकर संतने तन्मय होकर *'प्रभु मेरे अवगुन चित न धरो'* भजन गाया और फिर भावमय चित्तसे भी श्रीहरिनामसंकीर्तन कराकर प्रातःकालीन सत्संगका समापन करते हुए वे मौन हो गये। लोग भी जाने लगे।

भगवन्! आपके श्रीचरणोंमें हरिप्रसादका प्रणाम निवेदन है।

प्राणप्रिय नीलमणि यशोदानन्दनके ध्यानमें खोये-खोये-से महात्मा चौंक पड़े। हरिप्रसाद! ओह गाँवके श्रीमन्तसेठ! जो बाहर रहते हैं और यदा-कदा ही गाँवमें आ पाते हैं, उन्होंने प्रश्नसूचक दृष्टिसे उन्हें देखा।

भगवन्! मेरा निवेदन है कि हमें कुछ सेवाका अवसर दें।

श्रीमन्! मुझे तो किसी भी प्रकारकी सेवाकी आवश्यकता नहीं है। शरीरकी जो कुछ उचित आवश्यकता होती है, उनकी पूर्ति वे कृपालु प्रभु बिना माँगे ही किसी न किसी माध्यमसे पूरी कर देते हैं।

मैं समझ रहा हूँ कि आपको किसी भी प्रकारकी कोई आवश्यकता नहीं है, परंतु हम ग्रामवासियोंकी अभिलाषा है कि आपके आगमनके साथ जो सौभाग्य इस गाँवका उदय हुआ है, वह क्रमशः उन्नत होता रहे। इस हेतु हम चाहते हैं कि यहाँ हम सबके आराध्यदेव श्रीगोविन्ददेवजीके मन्दिरका निर्माण हो जाय। आपका आदेश मिलनेपर ही इसका शुभारम्भ हो सकता है।

संत कुछ देर मौन रहकर बोले—जैसी प्रभुकी इच्छा।

आप जबतक मन्दिरका निर्माण पूरा हो, तबतक हमारी हवेलीके पासवाले नोहरेमें जहाँ रहनेकी सभी सुविधाएँ हैं, वहाँ रहकर गीतामृत-प्रसाद बाँटते रहें।

ठीक है, जगन्नियन्ताके विधानानुसार जिस समय जो होना होता है, वह सब मंगलमय ही होता है। भगवान् गोविन्दके मन्दिर-निर्माणका कार्यक्रम मेरे लिये प्रसन्नताकी बात है। मैं कल प्रातः इस स्थानको छोड़ दूँगा। कहकर संत नेत्र बन्दकर मौन ध्यानस्थ हो गये।

कुछ देर हरिप्रसादजी और साथके गाँवके सज्जन बैठे रहे, फिर स्वीकृति समझ प्रणाम करते हुए विदा हो

गये।

शामको गाँवके युवक-बालक नित्य नियमके अनुसार शान्त बैठे महात्माजीसे मानवोचित संस्कारोंका पाठ पढ़ रहे थे।

'नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।'

(३।८)

तुम अपने नियत कर्म करो। कर्म न करनेसे कर्म करते रहना ही श्रेष्ठ है।

बच्चो! प्रत्येक व्यक्ति वर्ण, कुल, परिवार, समाज, राष्ट्रमें कहीं न कहीं स्थित है और जो जहाँ स्थित है, उसके लिये वहीं कर्तव्यरूपमें नियत कर्म भी उपस्थित है। कुल-परिवारके प्रति, समाजके प्रति, राष्ट्रके प्रति, प्रत्येक प्राणीके प्रति, बुजुर्गोंके प्रति कर्तव्य कर्म नियत होते हैं, प्रत्येक मनुष्यके लिये।

जो कोई जहाँ नियुक्त है, उसे अपना नियत धर्म-नियत कर्तव्य कर्म अवश्य निश्छल एवं प्रमादरहित होकर पूरा करना चाहिये। अगर कोई व्यक्ति शासन-कार्योंमें नियुक्त है तो उसे अपने राजधर्मको अवश्य निभाना चाहिये। शिक्षणसंस्थामें, चिकित्सालयमें कोई शिक्षक, डॉक्टर हो सकता है। ऑफिस, कार्यालय, कारखाने, मिल, दुकान आदि किसी भी कार्यस्थलमें जो कोई जहाँ भी नियुक्त है, उसे चाहिये कि उसके लिये वहाँ जो कुछ भी कर्तव्य नियत किया गया है, उसे वह पूर्ण लगन, परिश्रम, निष्ठा एवं ईमानदारीसे पूरा करता रहे।

नियतकर्मोंके साथ भगवान्‌ने आगे **'यज्ञार्थात् कर्मणः'** कहा है। यज्ञ शब्द बहुत व्यापक और गहरा अर्थ लिये हुए है। यहाँ हमें इतना ही समझ लेना है कि निःस्वार्थ भावसे श्रेष्ठतम कर्म करना ही यज्ञकर्म है। पूज्योंकी पूजा, वृद्धजनोंका सम्मान, विपद्ग्रस्तको सहयोग, अभावग्रस्तोंके अभावमें यथाशक्ति सहायक होना—ये सब निःस्वार्थ भावसे सेवारूपमें करना ही यज्ञकर्म है। अपने-अपने कर्मोंमें तत्परतासे लगा हुआ और यज्ञकर्म करता हुआ, उन कर्मोंद्वारा उस परमेश्वरका पूजन-अर्चन करता हुआ मनुष्य संसिद्धि प्राप्त कर लेता है, अपने इस जीवनको सफल कर लेता है।

महात्माजीने ***'हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों। साधन धाम विबुध दुरलभ तनु मोहि कृपा कर दीन्हों॥'*** यह तुलसीदासजीका भजन बहुत भाव-विभोर मधुर स्वरमें गाया। श्रीहरिनाम-संकीर्तन कराया, तत्पश्चात् कहा—बच्चो! जीवनमें विद्याध्ययन करते हुए अपने-अपने कर्मक्षेत्रमें प्रवेश करो। क्षमा एवं दयाको धारणकर प्रभुको सदा याद रखना। जाओ, अब विश्राम करो।

प्रातः जब नित्य-नियमानुसार गाँवके स्त्री-पुरुष आश्रममें पहुँचे तो आश्रम-झोपड़ी सूने पड़े थे। आसनपर एक पत्र मिला। लिखा था—

'प्रिय बन्धुओ! सप्रेम हरिस्मरण। भगवान् श्रीकृष्णने श्रीगीताजीमें इस दृश्य-जगत्‌को **'आगमापायिनः अनित्याः'** कहा है। जो संसार है, यह आने एवं जानेवाला, अनित्य अर्थात् सदा न स्थिर है, न रहनेवाला है। क्षेत्रकी आसक्तियोंका त्याग करो और क्षेत्रज्ञका बोध प्राप्तकर उस परमका चिन्तन-मनन करते हुए सुस्नेही प्रभुसे युक्त रहो। मुझे बहुत प्रसन्नता है कि गाँवमें भगवान् श्रीगोविन्दका मन्दिर बन रहा है। मुझे पूरा विश्वास है कि मन्दिर भी अवश्य बनेगा और आप लोग नित्य गीताका अध्ययन करते हुए श्रीहरिनाम-संकीर्तन यज्ञको यथावत् जारी रखेंगे।

इस विश्वरूप-विश्वका जो कुछ भी है, मैं आप और अन्य सब उस जगत्प्रभु सर्वेश्वरके ही रूप हैं। वही कर्ता है, वही कर्म है, वही कारण है। हम सब उसके हाथके क्रीडायन्त्रमात्र हैं। उसकी सत्तासे ही हम सत्तावान् दिखायी देते हैं। कर्ता नहीं हैं, हम तो निमित्तमात्र हैं, उनके साथ युक्ततामें ही हमारा जीवन कृतार्थ है। सबका कल्याण हो।'

—एक अनाम पथिक

यह पत्र गाँववालोंके लिये जीवनका प्रेरणास्रोत बन गया।

'सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा'

(श्री बी०के० कुमावतजी)

पौराणिक कथाओंमें उल्लेख है कि गृध्रराज जटायु महाराज दशरथजीके मित्र थे। वनवासके दौरान पंचवटीमें भगवान् श्रीरामसे उनकी भेंट हुई। भगवान् श्रीरामने उन्हें पितातुल्य मानकर बहुत आदर दिया। गृध्रराजने कहा कि दोनों भाइयोंकी अनुपस्थितिमें वे सीताजीकी रक्षा करेंगे। **'सीतां च तात रक्षिष्ये त्वयि याते सलक्ष्मणे।'** (वा०रा० ३।१४।३४)

भगवान् श्रीराम नंगे पाँव वनमें विचरते अनेक वर्ष पंचवटीमें रहे थे। जटायु एक अत्यन्त ऊँचे महावृक्षपर रहते थे। वनमें जहाँ-तहाँ जो प्रभु-चरण प्रगटे थे, उनमें स्थित चरण-चिह्नोंको जटायु आसानीसे अच्छी तरहसे हमेशा देखते थे; क्योंकि गृध्रोंकी दृष्टि तीव्र और अपार होती है। गृध्रराज जटायु सदैव भगवान्‌के चरण-चिह्नोंका ध्यान करते थे। रावणके द्वारा घायल हो जानेसे पीड़ा-ग्रस्त अवस्थामें उनकी आँखें बन्द थीं, अतः पहले जो चरण-चिह्न देखे थे, उन्हींका वे मनमें स्मरण कर रहे थे। उन चरणचिह्नोंके विषयमें यहाँ कुछ विवेचन प्रस्तुत है—

श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामी तुलसीदासजीने प्रायः पाँच ही चिह्नोंका वर्णन किया है—ध्वज, वज्र, अंकुश, कमल और ऊर्ध्वरेखा।

रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे॥

(रा०च०मा० १।१९९।३)

ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे॥

(रा०च०मा० ७।१३।४ छन्द)

'अंकुस-कुलिस-कमल-धुज सुंदर भँवर तरंग-बिलासा।'

(गीतावली उ० पद १५)

महात्मा श्रीनाभादासजीने 'भक्तमाल' में भगवान् राघवेन्द्रके केवल २२ चिह्नोंका उल्लेख किया है। महर्षि अगस्त्यके 'श्रीरघुनाथ-चरण-चिह्न-स्तोत्र' में केवल १८ चिह्नों (अम्बुज, अंकुश, यव, ध्वजा, चक्र, ऊर्ध्वरेखा, स्वस्तिक, अष्टकोण, वज्र, बिन्दु, त्रिकोण, धनुष, वस्त्र, मत्स्य, शंख, अर्धचन्द्र, गोपद और घट)-का वर्णन मिलता है। श्रीयामुनाचार्यजीने सात चरण-चिह्नों (शंख, चक्र, कल्पवृक्ष, ध्वजा, कमल, अंकुश और वज्र)-का ही वर्णन किया है। महारामायणमें ४८ चरण-चिह्नोंका विशद वर्णन किया गया है। भगवान् श्रीरामजीके प्रत्येक चरण-कमलमें २४-२४ चिह्न हैं। अर्थात् २४ चिह्न दक्षिण पदारविन्दमें तथा २४ चिह्न वाम पदारविन्दमें हैं। यह उल्लेखनीय है कि जो चिह्न श्रीरामजीके दक्षिण पदारविन्दमें हैं, वे भगवती सीताके वाम पदारविन्दमें हैं। इसी प्रकार जो चिह्न श्रीरामजीके वाम पदारविन्दमें हैं, वे भगवती सीताके दक्षिण पदारविन्दमें हैं। श्रीशंकरजी पार्वतीजीसे कहते हैं—

यानि चिह्नानि रामस्य चरणे दक्षिणे प्रिये।
तानि सर्वाणि जानक्याः पादे तिष्ठन्ति वामके॥
यानि चिह्नानि जानक्या दक्षिणे चरणे शिवे।
तानि सर्वाणि रामस्य पादे तिष्ठन्ति वामके॥

(महारामायण ४८।१३-१४)

यह ध्यान देनेयोग्य है कि इतने चिह्न भगवान्‌के किसी और अवतार या स्वरूपमें नहीं हैं। इन ४८ चरण-चिह्नोंके सम्बन्धमें जो श्लोक प्राप्त हैं,* उनका पद्यमें भावानुवाद इस प्रकार है—

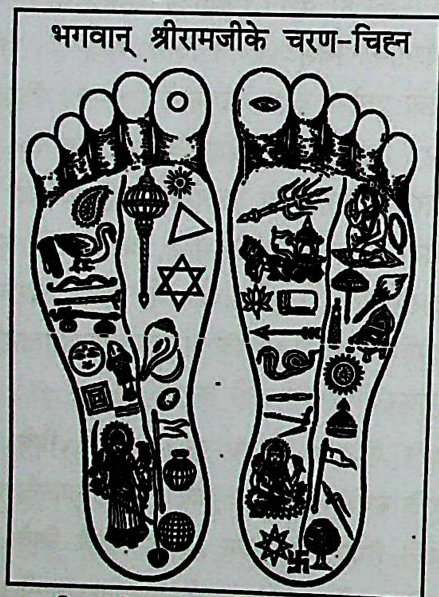
चित्त चेतन ध्यान करु नित चरण चिह्न श्रीराम के।

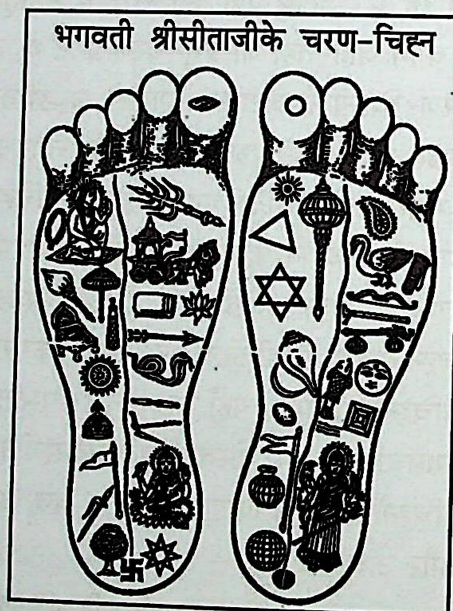
---

* श्रीरामदक्षिणपदस्थमथोर्ध्वरेखा, स्वस्त्यष्टकोणकमलाहलमौसलं च। शेषं शराम्बरसरोजरथं सवज्रं, ध्यायेद्यवं सुरतरुं जनकामपूरम्॥
भूयोंऽकुशध्वजकिरीटयुतं सचक्रं, सिंहासनं च ललितं यमदण्डचिह्नम्। छत्रं च चामर नरं जयमाल्यमेतद्, वेदाक्षिसंख्यमनिशं मनसा स्मरामि॥
वामे पदे स्थितमहं सरयूसुतीर्थं, गोपादभूमिघटशोभितमुत्पताकम्। जम्बूफलार्द्धशशिशङ्खषडस्रयुक्तं, त्रैकोणकं च गदया सहजीवमीडे॥
विन्दुं च शक्त्यमृतकुण्डवलित्रयं च, मीनं च पूर्णशशिवीणमहं भजामि। बंशीशरासनयुतेष्वधिराजहंसं, सीतापतेः श्रुतिनुतं च सचंद्रिकं च॥
सीताङ्घ्रिपंकजमिदं हि विपर्ययेण, वामेतरं च सुधियः परिभावयंतु। चिह्नानि चाष्टजलधिप्रमितानि नित्यं, ध्यायञ्जनो रघुपतेर्लभते सुधाम॥
यः श्लोकपञ्चकमिदं मनुजः पठेत् ध्यात्वा हृदि प्रतिदिनं रघुनन्दनाङ्घ्री। हित्वा बहूनि दुरितानि पुरार्जितानि, प्राप्नोत्यभीष्टधनधर्ममथापवर्गम्॥

पतितपावन मन लुभावन परम प्रिय अभिराम के॥
ऊर्ध्व रेखा, स्वस्ति, है वसुकोण, कमला, शर, हलम्।
शेष, मूशल, कमल, अम्बर, लखत ललित ललाम के॥
सौम्यरथ, पुनि बज्र, यव प्रिय देवतरु, अंकुश, ध्वजा।
चक्र, क्रीट, सुचमर, सिंहासन, थकित छवि काम के॥
छत्र, पुनि यमदण्ड, माला, नर, सहित चौबीस हैं।
श्रीरामभद्र पदाब्ज दक्षिण चिन्हप्रद हरिधाम के॥
सुभग सरयू धेनुपदक्षिति, घट पताका, दिव्य हैं।
जम्बु फल, शंखार्ध शशि, षट कोण, जीवन जाम के॥
त्रिकोण, गदया, जीवविन्दु सुशक्ति अमृतसर, सही।
त्रिवलि झष शशि पूर्ण, वीना वंशि वनि घनश्याम के॥
धनु शरासन, चन्द्रिका, मनहरण हंस, विलोकिये।
परम पावन दुख नसावन चिह्न पद श्रीवाम के॥
युगल चरणों में सुशोभित चिह्न अड़तालिस भने।
इन चरण बिनलगननिसदिन 'टहल' बिन बेकाम के॥

'महारामायण' तथा 'भक्तमाल' की वार्तिकप्रकाश टीकामें इन चिह्नोंके रंग, कार्य तथा महत्त्वकी विस्तृत विवेचना की गयी है। अपनी-अपनी उपासना-पद्धतिके अनुसार लोग भगवान्‌के चरणारविन्दके चिह्नोंका ध्यानकर श्रीरामकी भक्तिका रसास्वादन करते हैं। इन चिह्नोंका ध्यान करनेसे मन तथा हृदय पवित्र होते हैं और संसार-सागरके भय, पीड़ा एवं क्लेशका विनाश होता है।


भगवान् श्रीरामजीके चरण-चिह्न


भगवती श्रीसीताजीके चरण-चिह्न

भगवान् श्रीरामके दक्षिण चरणारविन्दके चिह्न

१. ऊर्ध्व रेखा—इसका रंग गुलाबी है। इसके अवतार सनक, सनन्दन, सनतकुमार और सनातन हैं। जो व्यक्ति इस चिह्नका ध्यान करते हैं, उन्हें महायोगकी सिद्धि होती है और वे भवसागरसे पार हो जाते हैं।

२. स्वस्तिक—इसका रंग पीला है। इसके अवतार श्रीनारदजी हैं। यह मंगलकारक एवं कल्याणप्रद है। इस चिह्नका ध्यान करनेवालोंको सदैव मंगल एवं कल्याणकी प्राप्ति होती है।

३. अष्टकोण—यह लाल और सफेद रंगका है। यह यन्त्र है। इसके अवतार श्रीकपिलदेवजी हैं। जो व्यक्ति इस चिह्नका ध्यान करते हैं, उन्हें अष्ट सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं।

४. श्रीलक्ष्मीजी—इनका रंग अरुणोदयकालकी लालिमाके समान है। बहुत ही मनोहर हैं। अवतार साक्षात् लक्ष्मीजी ही हैं। जो लोग इस चिह्नका ध्यान करते हैं, उन्हें ऐश्वर्य तथा समृद्धिकी प्राप्ति होती है।

५. हल—इसका रंग श्वेत है। इसका अवतार बलरामजीका हल है। यह विजयप्रदाता है। जो लोग इसका ध्यान करते हैं, उन्हें विमल विज्ञानकी प्राप्ति होती है।

६. मूसल—इसका रंग धूम्र-जैसा है। अवतार मूसल है। जो व्यक्ति इस चिह्नका ध्यान करते हैं, उनके

शत्रुका नाश हो जाता है।

७. सर्प (शेष)—इसका रंग श्वेत है। इसके अवतार शेषनाग हैं। जो लोग इस चिह्नका ध्यान करते हैं, वे भगवान्‌की भक्ति तथा शान्ति प्राप्त करनेके अधिकारी होते हैं।

८. शर (बाण)—इसका रंग सफेद, पीला, गुलाबी और हरा है। इसका अवतार बाण है। इसका ध्यान करनेवालोंके शत्रु नष्ट हो जाते हैं।

९. अम्बर (वस्त्र)—इसका रंग नीला और बिजलीके रंग-जैसा है। इसके अवतार वराह भगवान् हैं। जो लोग इस चिह्नका ध्यान करते हैं, उनके भयका नाश हो जाता है।

१०. कमल—इसका रंग लाल गुलाबी है। इसका अवतार विष्णु-कमल है। इसका ध्यान करनेवालेके यशमें वृद्धि होती है तथा उनका मन प्रसन्न रहता है।

११. रथ—यह चार घोड़ोंका है। रथका रंग अनेक प्रकारका होता है तथा घोड़ोंका रंग सफेद है। इसका अवतार पुष्पक विमान है। जो व्यक्ति इसका ध्यान करते हैं, उन्हें विशेष पराक्रमकी उपलब्धि होती है।

१२. वज्र—इसका रंग बिजलीके रंग-जैसा है। इसका अवतार इन्द्रका वज्र है। जो लोग इसका ध्यान करते हैं, उनके पापोंका क्षय होता है तथा बलकी प्राप्ति होती है।

१३. यव—इसका रंग श्वेत है। अवतार कुबेर हैं। इससे समस्त यज्ञोंकी उत्पत्ति होती है। इसके ध्यानसे मोक्ष मिलता है, पापका नाश होता है। यह सिद्धि, विद्या, सुमति, सुगति और सम्पत्तिका निवास-स्थान है।

१४. कल्पवृक्ष—इसका रंग हरा है। इसका अवतार कल्पवृक्ष है। जो व्यक्ति इसका ध्यान करता है, उसे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष प्राप्त होता है और सारे मनोरथ पूर्ण होते हैं।

१५. अंकुश—इसका रंग श्याम है। जो व्यक्ति इसका ध्यान करता है, उसे दिव्य ज्ञानकी प्राप्ति होती है, संसारजनित मलका नाश होता है और मनपर नियन्त्रण सम्भव होता है।

१६. ध्वजा—इसका रंग लाल है। इसे विचित्र वर्णका भी कहा जाता है। इसके ध्यानसे विजय तथा कीर्तिकी प्राप्ति होती है।

१७. मुकुट—इसका रंग सुनहला है। इसका अवतार दिव्य भूषण है। इसका ध्यान करनेवालोंको परम पदकी प्राप्ति होती है।

१८. चक्र—इसका रंग तपाये हुए स्वर्ण-जैसा है। इसका अवतार सुदर्शन चक्र है। इसका ध्यान करनेवालेके शत्रु नष्ट हो जाते हैं।

१९. सिंहासन—इसका रंग सुनहला है। इसका अवतार श्रीरामका सिंहासन है। जो लोग इसका ध्यान करते हैं, उन्हें विजय एवं सम्मानकी प्राप्ति होती है।

२०. यमदण्ड—इसका रंग कांसेके रंगके समान है। इसके अवतार धर्मराज हैं। इस चिह्नके ध्यान करनेवालोंको यमयातना नहीं होती और उन्हें निर्भयता प्राप्त होती है।

२१. चामर—इसका रंग सफेद है। इसका अवतार श्रीहयग्रीव हैं। जो लोग इसका ध्यान करते हैं, उन्हें राज्य एवं ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। ध्यानमें निर्मलता आती है, विकार नष्ट होते हैं तथा चन्द्रमाकी चन्द्रिकाके समान प्रकाशका उदय होता है।

२२. छत्र—इसका रंग शुक्ल है। इसका अवतार कल्कि हैं। जो व्यक्ति इस चिह्नका ध्यान करते हैं, उन्हें राज्य एवं ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। दैहिक, दैविक एवं भौतिक तापोंसे उनकी रक्षा होती है और मनमें दयाभाव आता है।

२३. नर (पुरुष)—इसका रंग गौर है। इसके अवतार दत्तात्रेय हैं। इसका ध्यान करनेसे भक्ति, शान्ति तथा सत्त्वगुणोंकी प्राप्ति होती है।

२४. जयमाला—यह बिजलीके रंगका है अथवा

इसका चित्र-विचित्र रंग भी कहा जाता है। जो व्यक्ति इसका ध्यान करते हैं, उनकी भगवद्-विग्रहके शृंगार तथा उत्सव आदिमें प्रीति बढ़ती है।

भगवान् श्रीरामके वाम चरणारविन्दके चिह्न

१. सरयू—इसका रंग श्वेत है। इसके अवतार विरजा-गंगा आदि हैं। जो व्यक्ति इस चिह्नका ध्यान करते हैं, उन्हें भगवान् श्रीरामकी भक्तिकी प्राप्ति होती है तथा कलिमूलका नाश होता है।

२. गोपद—इसका रंग सफेद और लाल है। इसका अवतार कामधेनु है। जो प्राणी इस चिह्नका ध्यान करते हैं, वे पुण्य, भगवद्भक्ति तथा मुक्तिके अधिकारी होते हैं।

३. पृथिवी—इसका रंग पीला और लाल है। इसका अवतार कमठ है। जो व्यक्ति इस चिह्नका ध्यान करते हैं, उनके मनमें क्षमाभाव बढ़ता है।

४. कलश—यह सुनहला और श्याम रंगका है। इसे श्वेत भी कहा जाता है। इसका अवतार अमृत है। इसका ध्यान करनेवालोंको भक्ति, जीवन्मुक्ति तथा अमरता प्राप्त होती है।

५. पताका—इसका रंग विचित्र है। इसके ध्यानसे मन पवित्र होता है। इस ध्वजा चिह्नसे कलिका भय नष्ट होता है।

६. जम्बूफल—इसका रंग श्याम है। इसके अवतार गरुड़ हैं। यह मंगलकारक होता है। इसका ध्यान करनेवालोंको अर्थ, धर्म, काम और मोक्षकी प्राप्ति होती है।

७. अर्धचन्द्र—इसका रंग उजला है। इसके अवतार वामनभगवान् हैं। जो व्यक्ति इसका ध्यान करते हैं, उनके मनके दोष दूर होते हैं, त्रिविध ताप नष्ट होते हैं, प्रेमाभक्ति बढ़ती है और भक्ति, शान्ति एवं प्रकाशकी प्राप्ति होती है।

८. शंख—इसका रंग लाल तथा सफेद है। इसके अवतार वेद, हंस, शंख आदि हैं। इसका ध्यान करनेसे दम्भ, कपट एवं मायाजालसे छुटकारा मिलता है, विजय प्राप्त होती है और बुद्धिका विकास होता है। यह अनाहत-अनहद नादका कारण है।

९. षट्कोण—इसका रंग श्वेत है, लाल भी कहा जाता है। इसके अवतार श्रीकार्तिकेय हैं। इसका जो ध्यान करते हैं, उनके षट्विकार—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मत्सरका नाश होता है। यह यन्त्ररूप है। इसका ध्यान षट्सम्पत्ति—शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा एवं समाधानका प्रदाता है।

१०. त्रिकोण—यह भी यन्त्ररूप है। इसका रंग लाल है। इसके अवतार परशुरामजी और हयग्रीव हैं। इसका ध्यान करनेवालोंको योगकी प्राप्ति होती है।

११. गदा—इसका रंग श्याम है। अवतार महाकाली और गदा हैं। इसका ध्यान करनेसे विजय प्राप्त होती है तथा दुष्टोंका नाश होता है।

१२. जीवात्मा—इसका रंग प्रकाशमय है और अवतार जीव है। इसका ध्यान शुद्धता बढ़ानेवाला होता है।

१३. बिन्दु—इसका रंग पीला तथा अवतार सूर्य एवं माया है। इसका ध्यान करनेवालेके वशमें भगवान् हो जाते हैं, समस्त पुरुषार्थोंकी सिद्धि होती है और पाप नष्ट हो जाते हैं। इसका स्थान अँगूठा है।

१४. शक्ति—यह श्याम-सित-रक्त वर्णका होता है। इसे लाल, गुलाबी और पीला भी कहा जाता है। इसके अवतार मूल प्रकृति, शारदा, महामाया हैं। इसका ध्यान करनेसे श्री—शोभा और सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।

१५. सुधाकुण्ड—इसका रंग सफेद एवं लाल है। इसका ध्यान अमरता प्रदान करता है।

१६. त्रिवली—यह तीन रंगका होता है—हरा, लाल और सफेद। इसके अवतार श्रीवामन हैं। इसका चिह्न वेदरूप है, जो व्यक्ति इसका ध्यान करते हैं, वे कर्म, उपासना और ज्ञानसे सम्पन्न हो भक्तिरसका आस्वादन करनेके अधिकारी होते हैं।

१७. मीन—इसका रंग उजला एवं रुपहला होता है। यह कामकी ध्वजा है, वशीकरण है। इसका ध्यान करनेवालेको भगवान्‌के प्रेमकी प्राप्ति होती है।

१८. पूर्णचन्द्र—इसका रंग पूर्णतः श्वेत है तथा अवतार चन्द्रमा है। इसका ध्यान करनेसे मोहरूपी तम तथा तीनों तापोंका नाश होता है और मानसिक शान्ति, सरलता एवं प्रकाशकी वृद्धि होती है।

१९. वीणा—इसका रंग पीला, लाल तथा उजला है। इसके अवतार श्रीनारदजी हैं। इसका ध्यान करनेसे राग-रागिनीमें निपुणता आती है और भगवान्‌के यशोगानमें सफलता प्राप्त होती है।

२०. वंशी (वेणु)—इसका रंग चित्र-विचित्र है और अवतार महानाद है। इसका ध्यान मधुर शब्दसे मनको मोहित करनेमें सफलता प्रदान करता है।

२१. धनुष—इसका रंग हरा-पीला और लाल है। इसके अवतार पिनाक और शार्ङ्ग हैं। इसका ध्यान मृत्युभयका निवारण करता है तथा शत्रुका नाश करता है।

२२. तूणीर—यह चित्र-विचित्र रंगका होता है और इसके अवतार श्रीपरशुरामजी हैं। इसके ध्यानसे भगवान्‌के प्रति सख्य रस बढ़ता है। ध्यानका फल सप्त भूमि-ज्ञान है।

२३. हंस—इसका रंग श्वेत एवं गुलाबी और सर्वरंगमय है। अवतार हंसावतार है। इसके ध्यानसे विवेक तथा ज्ञान बढ़ता है। संत-महात्माओंके लिये इसका ध्यान सुखद होता है।

२४. चन्द्रिका—इसका रंग सफेद, पीला और लाल है। इसका ध्यान कीर्ति बढ़ानेमें सहायक होता है।

इस प्रकार भगवच्चरणारविन्दके सभी चिह्न मंगलकारी हैं। भक्त श्रीभारतेन्दु हरिश्चन्द्रजीने भी श्रीरामचन्द्रजीके इन्हीं ४८ चरण-चिह्नोंका अपने काव्यमें वर्णन किया है और कहा है कि श्रीरामजीके दायें चरणमें जो चिह्न हैं, वे श्रीजानकीजीके बायें चरणकमलमें हैं और जो चिह्न श्रीरामजीके बायें चरणमें हैं, वे श्रीजानकीजीके दायें चरणमें हैं। इनकी महिमाका वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि सब कुछ छोड़कर उन्हीं चरणचिह्नोंका ध्यान करना चाहिये—*'भजु सब तजु हरिचंद अब।'*

ये चिह्न समस्त विभूतियों, ऐश्वर्यों तथा भक्ति-मुक्ति और भुक्तिके अक्षय कोष हैं। जिन प्राणियोंको भगवान् श्रीरामके चरण-कमल-चिह्नोंका ध्यान एवं चिन्तन प्रिय है, उनका जीवन वस्तुतः धन्य, पुण्यमय, सफल तथा सार्थक है। भगवान्‌के चरणारविन्दकी महिमा उनके चिह्नोंकी कल्याणकारी विशिष्ट गरिमासे समन्वित है। ये चरण-चिह्न संत-महात्माओं तथा भक्तोंके लिये सदैव सहायक और रक्षक हैं। भक्तमालमें महात्मा नाभादासजीने इस बातको रेखांकित किया है—

सीतापति पद नित बसत एते मंगलदायका।
चरन चिन्ह रघुबीर के संतन सदा सहायका॥

प्रभु व्यापक सर्वत्र समाना

(संत श्रीटेऊँरामजी महाराज)

मोहन सखी मन माहीं, री तुम देखत नाहीं।
आँखों माहीं, पड़ गई झाई, री तुम देखत नाहीं॥
बाहर क्यों तुम ढूँढ रही हो, मिलहैं और न ठाहीं।
हम तुम सब में खेल रहा जो, निशिदिन सुमरो ताहीं॥
सब घट साक्षी चेतन कृष्ण, तब उस भेद न आहीं।
कहे 'टेऊँ' तुम योग कमाओ, पड़ कर गुरु की पाहीं॥

[प्रेषक—श्रीमोहनजी प्रेमप्रकाशी]

कहानी—

नवधा भक्ति—द्वन्द्वातीत

'आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥'

(श्री 'चक्र')

(१)

'वह मेरा नौकर था, पर कभी उसने मुझसे वेतनके सम्बन्धमें कुछ कहा नहीं। जो कुछ उसे मिल जाता, वही बहुत था। पहली तारीखको मैं ही उसे बुलाकर वेतन देता। एक बार परीक्षाके लिये मैंने नहीं बुलाया। पूरे महीने नहीं बुलाया। न आया माँगने वह। दूसरे महीनेमें दोनों महीनेका वेतन देना पड़ा।' साहब अपने एक नौकरकी आत्मकथा सुना रहे थे।

देहरादूनसे ऊपर रानीखेतके पास मिस्टर जेम्सका बँगला है। वहाँके झरनोंमें गन्धक बताया जाता है। उनके गरम जलसे पेटके समस्त रोग ठीक हो जाते हैं। सम्भवतः इसी लालचसे वे वहाँ रहने लगे हैं। मैं तो इसी उद्देश्यसे सालभरसे वहाँ हूँ। साहब बँगलेमें अकेले ही रहते हैं। मेमसाहब उनके हैं नहीं। एक माली, एक खानसामा और एक टामी (कुत्ता), बस यही उनका परिवार है।

यहाँ और कोई मिलने-मिलानेवाला न होनेसे मैं साहबके पास अवसर मिलनेपर जा बैठता हूँ। एक दिन एक पहाड़ीपर टहलते हुए हम दोनोंका परिचय हुआ और फिर हमारी घनिष्ठता हो गयी। उनमें औद्धत्य छू नहीं गया है। बड़े सरल हैं, मिलनसार हैं। घण्टों मेरे साथ बैठकर हिन्दी साहित्य या वैष्णव-धर्मपर चर्चा करते हैं। बड़ी शुद्ध हिन्दी बोलते हैं और उनका गम्भीर अध्ययन देखकर मुझे आश्चर्य होता है।

मैंने ही आज वैष्णव धर्मकी चर्चा आरम्भ की थी। उसी बीचमें उन्होंने कहा 'वैष्णव'—'सच्चा वैष्णव तो जीवनमें मैंने एक ही देखा है? आज समझता हूँ, पश्चात्ताप करता हूँ। लेकिन उस समय मोहान्ध हो गया था।' हमारी चर्चाका विषय बदल गया।

'अफ्रीकाके बोअर युद्धमें मैं एक कर्नल था। वहीं मानवकी नृशंसताका नंगा चित्र देखनेको मिला। घृणा हो गयी। भारतके सम्बन्धमें बहुत कुछ पढ़ रखा था। यहाँ आ गया और आगरेमें कर ली प्रोफेसरी। यहाँ आनेसे पहलेतक मैं वहीं था।' साहबने अपना संक्षिप्त परिचय दिया।

'मेरे बँगलेके सामने फूलोंका छोटा-सा बगीचा था। जैसा कि तुम यहाँ देख रहे हो। फूलोंसे सदा मुझे प्रेम रहा है। उन्हींके लिये एक माली रहता था। वह बुड्ढा था और अकेला ही था। बँगलेके कोनेमें उसकी कोठरी थी। खुरपी, फावड़ा, फुहारा, बाल्टियाँ, बड़ी कैंची आदि बगीचेके कामका सामान उसीमें रहता था। बुड्ढेने एक कोना खाली कर लिया था। वहीं वह अपनी रोटियाँ बना लेता और चटाई डालकर सो भी जाता।' उस बुड्ढेके स्मरणसे साहबके नेत्र भर आये थे।

'एक कम्बल, फटी हुई दो धोतियाँ, दो अँगोछे और एक मिरजई—इतने ही कपड़े थे। एक तवा, एक लोटा, एक बटलोई और एक थाली—बर्तनोंके नामपर और कुछ नहीं था। एक चटाई उसकी गृहस्थीमें और बढ़ गयी थी। बड़े सबेरे स्नान करके बँगलेके सामनेके मन्दिरमें दर्शन कर आता और फिर जुट जाता बगीचेके काममें। दिनमें एक ही बार दो बजेके लगभग रोटियाँ बनाता। उजाला रहनेतक उसकी खुरपी काम करती रहती और शाम होते ही लालटेन जलाकर फाटकपर बैठ जाता और वहींसे सामने मन्दिरकी रामायण सुनता। मेरे पास दरवान नहीं था, अतः मैंने उसे शामको कहीं न जानेके लिये कह दिया था।' साहब यह वाक्य कहते-कहते बहुत दुखी हो गये थे। उन्होंने रूमालसे नेत्र पोंछ लिये और हमारी चर्चा उस दिन यहीं रुक गयी। मैं उन्हें और अधिक कष्ट देना नहीं चाहता था। उठकर चला आया।

(२)

'वेल! तुम पौधोंको ठीक सींचता नहीं! हमारे पौधे सूख गये!' साहब अप्रसन्न थे आज।

'सोचता तो हूँ हुजूर, परसों जो पत्थर पड़े, उन्हींसे...।' वह सरल सहज नम्रतासे कह रहा था।

'हम कुछ सुनने नहीं माँगता! जुर्माना करेगा तुमको!' साहबने नोटबुक खोल ली और पेन उठाया 'चार रुपया जुर्माना!'

'जो हुजूरकी मर्जी!' वह बुड्ढा सलाम करके चला गया। साहब स्तम्भित रह गये। इस झुर्री पड़े सफेद बालवाले मालीने उन्हें चकित कर दिया। 'एक रुपया जुर्मानेपर खानसामा दिनभर रोता है। हफ्तेभर उदास रहता है। महीनेभर माफी माँगता है। उसकी तनख्वाह पच्चीस है और यह बुड्ढा आठ पाता है! न रोया, न प्रार्थना की और न दुखी हुआ! चार रुपयेमें क्या खायेगा वह? सामने मन्दिरमें जो वह हर महीने पूजा करता है, कैसे करेगा?' ऐसा नौकर साहबने देखा नहीं था।

'माली!' साहबने पुकारा।

'हुजूर!' लौट आया वह।

'हम तुमको माफ करता है! अच्छा काम करनेपर तुमको इनाम मिलेगा!' अपने-आप साहब द्रवित हुए।

'हुजूरकी मर्जी!' चला गया वह सलाम करके।

'न खुश हुआ और न कृतज्ञता प्रकट की! कैसा मनहूस आदमी है!' साहबको पश्चात्ताप हो रहा था बुड्ढेको क्षमा देनेपर। उन्होंने उसे तंग करनेका पूरा निश्चय कर लिया।

जब मनुष्य क्रोध करता है तो अन्धा हो जाता है। उसकी सहज वृत्तियाँ अन्धकारमें पड़ जाती हैं। वह नीचताके गड्ढेमें गिरता है और गिरता चला जाता है। साहब नीचतापर उतर आया था। उसने खानसामासे कहा 'चुपकेसे बुड्ढेका कम्बल उठा लाओ!'

'माघकी रात्रि, परसों ओले पड़ चुके हैं। आज भी बदली रही है। बुड्ढा शामको खूब चिल्लायेगा!' कोई दूसरी बात साहबके मनमें नहीं थी।

दस बजे रातको साहब चौंके। खानसामा पुकारनेपर आया, उसने रिपोर्ट दी 'माली न तो बड़बड़ाया और न उसे गालियाँ दीं!' केवल इतना ही कहा, 'किसी बेचारेकी ठण्डी रात सुखसे कटेगी! अच्छा हुआ!' अब वह सूखी घास बगीचेसे ले आया है, उसीका ढेर बनाकर उसमें पड़ा है!'

'कम्बल दे आओ! मेरा नाम मत लेना!' साहबने अभी दया अवश्य दिखलायी, पर पराजय नहीं स्वीकार की। इसी जिद्दके मारे तो वे उस वर्ष गर्मियोंकी छुट्टीमें नैनीताल नहीं गये। ज्येष्ठकी कड़ी दोपहरीमें बगीचेकी सघन छायामें बैठकर बुड्ढेसे ठीक निर्जला एकादशीको पूरे दिन घास छिलवाया उन्होंने। वह एक बार असमर्थता बतलाता या छुट्टी चाहता तो प्रसन्न हो जाते; पर वह पूरा पत्थर है। चुपचाप काम करता गया।

खानसामाने शामको बुड्ढेसे कहा—'साहब पूरा जल्लाद है। व्रतके दिन भी...।' साहब सुन रहे थे।

'छिः! मालिककी निन्दा करते हो? काम नहीं लेंगे तो क्या मुख देखनेको रखा है! वैसे बड़े दयालु हैं।' साहब सुन नहीं सके। बँगलेमें आकर आरामकुर्सीपर धम्मसे बैठ गये।

'प्रभु मुझे क्षमा कर!' मिस्टर जेम्स बच्चोंकी तरह फूट-फूटकर रोने लगे। 'भाई गोविन्द! मैं यहाँ प्रायश्चित्त करने आया हूँ। सुना है प्रभु दयालु हैं, माफ कर देंगे! नहीं-नहीं! वे केवल अपने अपराधीको क्षमा करते हैं! अपने भक्तोंको कष्ट देनेवालेको वे भी क्षमा नहीं करते! उफ दण्ड भी तो नहीं मिलता! यह भीतरकी ज्वाला सही नहीं जाती!' सचमुच बहुत कठोर दण्ड मिला है उन्हें, जीवनभर भीतर-ही-भीतर जलते रहनेका।

(३)

'मुझसे पूछकर ही गया था वह! मालियोंकी पंचायत थी और उसका वह चौधरी था।' साहब कह रहे थे, 'मेरा अहंकार हारा नहीं था। मैंने खानसामाको

समझाकर भेज दिया। इतनी नीचता मैं खुद नहीं कर सकता था। आधे घण्टेमें वह मेरे पास आ गया। खानसामाका अभियोग था कि मालीने उसके कोटकी जेबसे पैसे चुराये हैं। प्रमाण न मिलनेसे मैंने खानसामाको डाँटा।' साहबका स्वर गद्गद हो गया था।

भरी पंचायतमें खानसामाने उसे गन्दी गालियाँ दी थीं और थप्पड़ लगाया था चोर कहकर; लेकिन मेरे पूछनेपर उसने कहा, 'मुझे कोई शिकायत नहीं! हुकुम हो तो पंचायतका काम पूरा कर आऊँ!' सुना मालियोंमें बड़ी उत्तेजना थी। वे खानसामाकी खूब मरम्मत करना चाहते थे। बुड्ढेने उन्हें समझाकर शान्त किया 'बेचारेके पैसे खो गये! मुझपर सन्देह न होता तो वह ऐसा क्यों करता? हानिसे दुखी है, भूल हो गयी!' मैं सुनकर ठक् रह गया और मैं सोच रहा था कि ईर्ष्या मनुष्यको कितना नीच बना सकती है।

'मैंने दूसरा माली रख लिया। बुड्ढेको केवल निगरानीका काम दे दिया और वेतन दुगुना कर दिया। कोई खुशी नहीं दिखायी दी उसके चेहरेपर। दूसरे दिन वह ज्यों-का-त्यों काममें जुटा था और नया माली जो उसका असिस्टेण्ट रखा गया था, बैठा हुआ चिलम पी रहा था। अन्ततः एक ही महीनेमें नये मालीको मुझे निकालना पड़ा। बुड्ढेने कभी उसकी शिकायत नहीं की। उसे न निकालनेकी प्रार्थना करने भी आया। वह वही आठ रुपये लेनेको तैयार था; पर मैंने किसी तरह स्वीकार नहीं किया। बुड्ढा अब प्रत्येक पूर्णिमाको सत्यनारायणकी कथा सुनने लगा था। मैं जानता था कि वेतनके बढ़े रुपये प्रसाद और दक्षिणामें दे आता है वह। मुझसे पूछकर पूर्णिमाको सामनेके मन्दिरमें कथाकी व्यवस्था करके सुनने चला जाता था!' साहबको बुड्ढेपर श्रद्धा थी।

(४)

'उस दिन पता नहीं मुझे क्या हो गया था! मुझे कौन-सा शैतान दबाये बैठा था! मैंने उसे आज्ञा नहीं दी। तुम्हारी रामनवमी! बुड्ढेको दो दिनसे रात्रिमें ज्वर आ रहा था। बगीचेका काम वह बराबर करता था। आजका काम उसने निबटा दिया था। पौधे सींच दिये थे और उखड़नेयोग्य क्यारियाँ गोड़ दी थीं। रामजन्मके समय मन्दिरमें जाना चाहता था वह। आधे घण्टेके लिये जायगा। आरती हो जानेपर लौट आयेगा!' साहबने सूनी दृष्टि ऊपर उठायी।

'सबेरे बिल्लीने दूध गिरा दिया था। चाय देरसे मिली थी। आजका अखबार आया नहीं था। पैरमें सीढ़ीसे उतरते समय बूट फिसलनेसे मोच आ गयी। झल्लाया हुआ था। कह दिया—'फाटकसे बाहर नहीं जा सकते! चुपचाप काम करो!' उसे प्रार्थना करना नहीं आता। चुपचाप सिर झुकाये चला गया।' साहबने आँखें पोंछी।

बन्दूकका शब्द हुआ। मैं बँगलेसे बाहर आ गया! 'कहाँ फायर हुआ?' पूछते ही मनमें आ गया कि मन्दिरमें जन्मके समय धड़ाका किया गया है। 'माली!' अपने सामने फाटकके सामने टूलपर उसका बैठना मुझे बुरा लगा। उत्तर न पाकर मैं झपटा। उसे ढकेलकर ठोकर लगाना चाहता था। हाथ लगाते ही मैं चौंककर दो कदम पीछे हट गया। धक्केसे बुड्ढा टूलसे लुढ़क गया था। वह माली कहाँ था? वह तो उसका शरीरभर था। साहब चीखकर मूर्छित हो गये।

मैं क्या करूँ? साहबको होश तो आया, पर वे पूरे सावधान नहीं हुए। बड़बड़ाते रहते हैं 'वह सुख-दुःखसे ऊपर था। हानि-लाभ उसे छू नहीं सकते थे। मानापमानके सिरपर उसने पैर दिया था। कोई दुर्गुणी भी होता है, कोई उसकी हानि भी करता है, यह वह सोचतक नहीं सकता था। वह सच्चा वैष्णव था।' पागलोंकी भाँति पहाड़ोंमें घूमते रहते हैं। एक वैष्णवको सतानेका उन्होंने यह प्रायश्चित्त किया। अब उन्हें पागल किसने किया? मैं न पूछता और न इतना बड़ा धक्का लगता उन्हें। मैं कौन-सा प्रायश्चित्त करूँ? दयामय, क्षमा कर!

श्रीआदिशंकराचार्यविरचित 'प्रबोधसुधाकर'

[गताङ्क सं० ९ पृ० ४३ से आगे]

मायासिद्धि

चिन्मात्रः परमात्मा ह्यपश्यदात्मानमात्मतया।
अभवत्सोऽहंनामा तस्मादासीद्भिदो मूलम्॥ ९५॥

चिन्मात्र परमात्माने ही प्रथम अपने आपको आप-रूपसे देखा, यही अहंकार हुआ, जो कि भेद-ज्ञानका मूल कारण है॥ ९५॥

द्वेधैव भाति तस्मात्पतिश्च पत्नी च तौ भवेतां वै।
तस्मादयमाकाशस्त्रिधैव परिपूर्यते सततम्॥ ९६॥
सोऽयमपीक्षां चक्रे ततो मनुष्या अजायन्त।
इत्युपनिषदः प्राहुर्दयितां प्रति याज्ञवल्क्योक्त्या॥ ९७॥

उपनिषद्में भी अपनी पत्नीके प्रति याज्ञवल्क्यकी उक्तिद्वारा कहा है कि वह परमात्मा दो-सा प्रतीत होता है, वही पति और पत्नी हो जाते हैं; इसलिये यह आकाश (ब्रह्म) निरन्तर तीन (पति, पत्नी और उनका अधिष्ठाता प्रजापति) भावोंसे पूर्ण रहता है। उस (त्रिधा-भावापन्न आकाशनामा ब्रह्म)-ने ईक्षण (चिन्तन) किया और उसीसे ये मनुष्य उत्पन्न हुए॥ ९६-९७॥

चिरमानन्दानुभवात्सुषुप्तिरिव काप्यवस्थाभूत्।
परमात्मनस्तु तस्मात्स्वप्नवदेवोत्थिता माया॥ ९८॥

चिरकालीन आनन्दका अनुभव करते-करते परमात्माकी सुषुप्तिके समान कोई अवस्था हुई, उसीसे स्वप्नके समान मायाका आविर्भाव हुआ॥ ९८॥

सदसद्विलक्षणासौ परमात्मसदाश्रयानादिः।
सा च गुणत्रयरूपा सूते सचराचरं विश्वम्॥ ९९॥

यह माया सत् और असत्से विलक्षण है, अनादि है और सदैव परमात्माके आश्रित रहनेवाली है। यह त्रिगुणात्मिका माया ही चराचर जगत्को उत्पन्न करती है॥ ९९॥

माया तावददृश्या दृश्यं कार्यं कथं जनयेत्।
तन्तुभिरदृश्यरूपैः पटोऽत्र दृश्यः कथं भवति॥ १००॥

माया तो अव्यक्त है, वह इस व्यक्त प्रपंचको कैसे उत्पन्न कर सकती है? अदृश्य मायारूप तन्तुओंसे यह दृश्य जगत्-रूप पट कैसे हो सकता है?॥ १००॥

स्वप्ने सुरतानुभवाच्छुक्रद्रावो यथा शुभे वसने।
अनृतं रतं प्रबोधे वसनोपहतिर्भवेत्सत्या॥ १०१॥
स्वप्ने पुरुषः सत्यो योषिदसत्या तयोर्युतिश्च मृषा।
शुक्रद्रावः सत्यस्तद्वत्प्रकृतेऽपि सम्भवति॥ १०२॥

स्वप्नमें स्त्री-सुखका अनुभव होनेसे जिस प्रकार शुद्धवस्त्रमें ही वीर्यपात हो जाता है, उसी प्रकार अव्यक्त प्रकृतिसे व्यक्त जगत् हो जाता है। जाग जानेपर स्वप्नका रमण तो मिथ्या हो जाता है, किंतु उससे वस्त्र सचमुच बिगड़ जाता है; स्वप्नावस्थामें भी पुरुष तो सत्य ही होता है, किंतु स्त्री और पुरुषके साथ उसका संयोग ये दोनों मिथ्या होते हैं फिर भी वीर्यपात हो ही जाता है॥ १०१-१०२॥

एवमदृश्या माया तत्कार्यं जगदिदं दृश्यम्।
माया तावदियं स्याद्या स्वविनाशेन हर्षदा भवति॥ १०३॥

इसी प्रकार माया तो अदृश्य है, किंतु उसका कार्य यह जगत् दृश्य-रूप है और माया तो यही है कि वह अपने नाशसे ही आनन्द देनेवाली होती है॥ १०३॥

रजनीवातिदुरन्ता न लक्ष्यतेऽत्र स्वभावोऽस्याः।
सौदामिनीव नश्यति मुनिभिः संप्रेक्ष्यमाणैव॥ १०४॥

यह अन्धकारमयी रात्रिके समान दुरन्त है, इसके स्वभावका कुछ पता ही नहीं चलता; किंतु मुनिजनोंद्वारा विचारपूर्वक देख ली जानेपर यह बिजलीके समान तुरंत ही नष्ट हो जाती है॥ १०४॥

माया ब्रह्मोपगताऽविद्या जीवाश्रया प्रोक्ता।
चिदचिद्ग्रन्थिश्चेतस्तदक्षयं ज्ञेयमामोक्षात्॥ १०५॥

ब्रह्मके आश्रित हुई माया ही जीवाश्रया अविद्या कहलाती है; यही चित्तकी जड-चेतन-ग्रन्थि है; जबतक मोक्ष न हो, तबतक इसे अक्षय ही जानना चाहिये॥ १०५॥

घटमठकुड्यैरावृतमाकाशं तत्तदाह्वयं भवति।
तद्वदविद्यावृतमिह चैतन्यं जीव इत्युक्तः॥ १०६॥

घट, मठ और भित्ति आदि उपाधियोंसे आवृत आकाश घटाकाश, मठाकाश आदि तदनुकूल नामवाला हो जाता है, उसी प्रकार अविद्यासे आवृत शुद्ध चेतन

ही जीव कहलाता है॥ १०६॥

ननु कथमावरणं स्यादज्ञानं ब्रह्मणो विशुद्धस्य।
सूर्यस्येव तमिस्त्रं रात्रिभवं स्वप्रकाशस्य॥ १०७॥

(इसमें सन्देह होता है कि) विशुद्ध ब्रह्मका अज्ञान किस प्रकार आवरण कर सकता है? रात्रिका अन्धकार भी क्या स्वयं-प्रकाश सूर्यको ढक सकता है?॥ १०७॥

दिनकरकिरणोत्पन्नैर्मेघैराच्छाद्यते यथा सूर्यः।
न खलु दिनस्य दिनत्वं तैर्विकृतैः सान्द्रसंघातैः॥ १०८॥
अज्ञानेन तथात्मा शुद्धोऽपि च्छाद्यते सुचिरम्।
न परं तु लोकसिद्धा प्राणिषु तच्चेतनाशक्तिः॥ १०९॥

(इसका समाधान करते हैं कि) अपनी ही किरणोंसे उत्पन्न हुए मेघोंसे जिस प्रकार सूर्य ढक जाता है, किंतु इससे दिनके दिनत्वमें कोई विकार नहीं होता, इसी प्रकार शुद्ध आत्मा भी चिरकालतक अज्ञानसे आवृत रहता है, किंतु उसके परमात्मत्वमें कोई बाधा नहीं आती; वह तो प्राणियोंमें चेतनाशक्तिके रूपसे लोकमें सिद्ध ही है॥ १०८-१०९॥

लिंगदेहादि-निरूपण

स्थूलशरीरस्यान्तर्लिङ्गशरीरं च तस्यान्तः।
कारणमस्याप्यन्तस्ततो महाकारणं तुर्यम्॥ ११०॥

स्थूल शरीरके भीतर लिंग देह है, उसके भीतर कारण शरीर है और उसके भी भीतर महाकारण नामक तुरीय आत्मा है॥ ११०॥

स्थूलं निरूपितं प्रागधुना सूक्ष्मादितो ब्रूमः।
अंगुष्ठमात्रः पुरुषः श्रुतिरिति यत्प्राह तत्सूक्ष्मम्॥ १११॥

स्थूलका तो पहले निरूपण हो चुका, अब आरम्भसे ही सूक्ष्मका वर्णन करते हैं। जिसको श्रुतिने 'अङ्गुष्ठमात्र पुरुष' कहा है, वही सूक्ष्म-शरीर है॥ १११॥

सूक्ष्माणि महाभूतान्यसवः पञ्चेन्द्रियाणि पञ्चैव।
षोडशमन्तःकरणं तत्संघातो हि लिङ्गतनुः॥ ११२॥

पाँच सूक्ष्म महाभूत, पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और सोलहवाँ अन्तःकरण—इन तत्त्वोंके समूहका नाम ही सूक्ष्म-शरीर है॥ ११२॥

तत्कारणं स्मृतं यत्तस्यान्तर्वासनाजालम्।
तस्य प्रवृत्तिहेतुर्बुद्ध्याश्रयमत्र तुर्यं स्यात्॥ ११३॥

उसका कारण-रूप जो कारण शरीर है, उसमें केवल वासनाओंका समूह होता है, उसकी प्रवृत्तिका हेतु बुद्धिका आश्रय तुरीय ही है॥ ११३॥

तत्सारभूतबुद्धौ यत्प्रतिफलितं तु शुद्धचैतन्यम्।
जीवः स उक्त आद्यैर्योऽहमिति स्फूर्तिकृद्वपुषि॥ ११४॥

बुद्धिमें प्रतिबिम्बित शुद्ध चैतन्य ही सार वस्तु है, उसीको पूर्व महर्षियोंने शरीरका प्रेरक 'जीव' कहा है॥ ११४॥

चरतरतरङ्गसङ्गात्प्रतिबिम्बं भास्करस्य च चलं स्यात्।
अस्ति तथा चञ्चलता चैतन्ये चित्तचाञ्चल्यात्॥ ११५॥

जिस प्रकार चंचल तरंगोंके कारण सूर्यका प्रतिबिम्ब भी चंचल प्रतीत होता है, उसी प्रकार चित्तकी चंचलतासे चैतन्यमें भी चंचलता प्रतीत होती है॥ ११५॥

नन्वर्कप्रतिबिम्बः सलिलादिषु यः स चावभासयति।
किमितरपदार्थनिवहं प्रतिबिम्बोऽप्यात्मनस्तद्वत्॥ ११६॥

(इसमें शंका करते हैं कि) जलमें पड़ा हुआ सूर्यका प्रतिबिम्ब तो अन्यान्य पदार्थोंको प्रकाशित करता है, क्या आत्म-प्रतिबिम्ब भी ऐसा ही है? (इसके उत्तरमें कहते हैं कि) हाँ, आत्माका प्रतिबिम्ब भी ऐसा ही है॥ ११६॥

प्रतिफलितं यत्तेजः सवितुः कांस्यादिपात्रेषु।
तदनु प्रविष्टमन्तर्गृहमन्यार्थान्प्रकाशयति॥ ११७॥
चित्प्रतिबिम्बस्तद्वद्बुद्धिषु यो जीवतां प्राप्तः।
नेत्रादीन्द्रियमार्गैर्बहिरर्थान् सोऽवभासयति॥ ११८॥

काँसा आदिके पात्रोंमें प्रविष्ट हुआ सूर्यका तेज घरके भीतरके अन्य पदार्थोंको प्रकाशित किया करता है, उसी प्रकार बुद्धिमें पड़ा हुआ चेतनका प्रतिबिम्ब भी जीव-भावको प्राप्त होकर नेत्रादि इन्द्रियोंके द्वारा बाह्यपदार्थोंको प्रकाशित करता है॥ ११७-११८॥

अद्वैत

तदिदं य एवमार्यो वेद ब्रह्माहमस्मीति।
य इदं सर्वं च स्यात्तस्य हि देवाश्च नेशते भूत्या॥ ११९॥
येषां स भवत्यात्मा योऽन्यामथ देवतामुपास्ते यः।
अहमन्योऽसावन्यश्चेत्थं यो वेद पशुवत्सः॥ १२०॥
इत्युपनिषदामुक्तिस्तथा श्रुतिर्भगवदुक्तिश्च।
ज्ञानी त्वात्मैवेयं मतिर्ममेत्यत्र युक्तिरपि॥ १२१॥

'वह ब्रह्म मैं हूँ' जो भद्र पुरुष ऐसा जानता है,

वह यह सम्पूर्ण विश्वरूप हो जाता है, उसके वैभवकी देवगण भी बराबरी नहीं कर सकते; क्योंकि वह उनका भी आत्मा हो जाता है। जो आत्मासे भिन्न किसी और देवकी उपासना करता है, उसको वह ब्रह्म अन्यके समान रहता है तथा 'मैं अन्य हूँ और यह ब्रह्म अन्य है' जो ऐसा जानता है, वह पशु है—ऐसे उपनिषद् तथा श्रुतिके वाक्य हैं तथा भगवान्ने भी कहा है कि 'ज्ञानी तो मेरा आत्मा ही है, ऐसा मेरा मत है।' इसके अतिरिक्त युक्तिसे भी ऐसा ही सिद्ध होता है॥ ११९—१२१॥

ऋजु वक्रं वा काष्ठं हुताशदग्धं सदग्नितां याति।
तत्किं हस्तग्राह्यं ऋजुवक्राकारसत्त्वेऽपि॥ १२२॥

अग्निसे दग्ध हो जानेपर टेढ़ी या सीधी जैसी भी लकड़ी हो, अग्निरूप हो जाती है; उसमें सीधा या टेढ़ा आकार रहता भी है, तथापि क्या उसे हाथसे छू सकते हैं?॥ १२२॥

एवं य आत्मनिष्ठो ह्यात्माकारश्च जायते पुरुषः।
देहीव दृश्यतेऽसौ परं त्वसौ केवलो ह्यात्मा॥ १२३॥

इसी प्रकार आत्मनिष्ठ पुरुष भी आत्माकार हो जाता है; वह देही-सा प्रतीत तो होता है, तथापि होता शुद्ध आत्मामात्र ही है॥ १२३॥

प्रतिफलति भानुरेकोऽनेकशरावोदकेषु यथा।
तद्वदसौ परमात्मा ह्येकोऽनेकेषु देहेषु॥ १२४॥

जिस प्रकार जलके अनेक शकोरोंमें एक ही सूर्यका प्रतिबिम्ब पड़ता है, उसी प्रकार यह एक ही परमात्मा अनेक देहोंमें भास रहा है॥ १२४॥

दैवादेकशरावे भग्ने किं वा विलीयते सूर्यः।
प्रतिबिम्बचञ्चलत्वादर्कः किं चञ्चलो भवति॥ १२५॥

दैवयोगसे यदि एक शकोरा टूट जाय तो क्या उससे सूर्यका लय हो जाता है? जलकी चंचलताके कारण प्रतिबिम्बके चलायमान होनेसे क्या सूर्य भी चंचल हो जाता है?॥ १२५॥

स्वव्यापारं कुरुते यथैकसवितुः प्रकाशेन।
तद्वच्चराचरमिदं ह्येकात्मसत्तया चलति॥ १२६॥

यह चराचर जगत् जैसे एक ही सूर्यके प्रकाशमें अपने समस्त कार्य करता है, उसी प्रकार यह एक ही आत्माकी सत्तासे गतिशील हो रहा है॥ १२६॥

येनोदकेन कदलीचम्पकजात्यादयः प्रवर्धन्ते।
मूलकपलाण्डुलशुनास्तेनैवैते विभिन्नरसगन्धाः॥ १२७॥

जिस जलसे केला, चम्पा और जाति आदिके पौधे बढ़ते हैं, उसीसे सर्वथा भिन्न रस और गन्धवाले मूली, प्याज और लहसुन आदि भी पोषित होते हैं॥ १२७॥

एको हि सूत्रधारः काष्ठप्रकृतीरनेकशो युगपत्।
स्तम्भाग्रपट्टिकायां नर्तयतीह प्रगूढतया॥ १२८॥

एक ही सूत्रधार स्वयं छिपा रहकर काष्ठकी अनेक पुतलियोंको स्तम्भके अग्रपट पर एक साथ नचाता रहता है॥ १२८॥

गुडखण्डशर्कराद्या भिन्नाः स्युर्विकृतयो यथैकेक्षोः।
केयूरकङ्कणाद्या यथैकहेम्नो भिदाश्च पृथक्॥ १२९॥
एवं पृथक्स्वभावं पृथगाकारं पृथग्वृत्ति।
जगदुच्चावचमुच्चैरेकेनैवात्मना चलति॥ १३०॥

जिस प्रकार एक ही ईखके गुड़, खाँड़ और शक्कर आदि नाना प्रकारके विकार होते हैं तथा एक ही सुवर्णके कंकण, केयूर आदि पृथक्-पृथक् अनेक भेद होते हैं, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न स्वभाव, आकार और आचरणवाला उच्च और नीच जगत् एक ही आत्माकी सत्तासे प्रवृत्त हो रहा है॥ १२९-१३०॥

स्कन्धधृतसिद्धमन्नं यावन्नाश्नाति मार्गगस्तावत्।
स्पर्शभयक्षुत्पीडे तस्मिन्भुक्ते न ते भवतः॥ १३१॥

मार्गमें जाते हुए जबतक कि कन्धेपर रखे हुए बने-बनाये भोजनको नहीं खाते, तभीतक उसके छूनेका भय और क्षुधाकी पीड़ा रहती है; उसको खा लेनेपर कोई भी खटका नहीं रहता॥ १३१॥

मानुषमतङ्गमहिषश्वसूकरादिष्वनुस्यूतम् ।
यः पश्यति जगदीशं स एव भुङ्क्तेऽद्वयानन्दम्॥ १३२॥

जो पुरुष हाथी, भैंसे, कुत्ते और शूकर आदिमें एक ही जगदीश्वरको व्याप्त हुआ देखता है, वही अद्वैतानन्दका भोग करता है॥ १३२॥

कर्तृत्वभोक्तृत्व

यद्वत्सूर्येऽभ्युदिते स्वव्यवहारं जनः कुरुते।
तं न करोति विवस्वान्न कारयति तद्वदात्मापि॥ १३३॥

सूर्यके उदय होनेपर जैसे-मनुष्य ही अपने-अपने कार्योंको करते हैं, सूर्य कुछ भी नहीं करता, वैसे ही आत्मा भी न कुछ करता है न कराता है॥ १३३॥

लोहे हुतभुग्व्याप्ते लोहान्तरताड्यमानेऽपि।
तस्यान्तर्गतवह्नेः किं स्यान्निर्घातजं दुःखम्॥ १३४॥

अग्निसे व्याप्त हुए लोहेको दूसरे लोहेसे पीटनेपर क्या उसके भीतर व्याप्त हुई अग्निको भी कोई चोट लगती है?॥ १३४॥

निष्ठुरकुठारघातैः काष्ठे संछेद्यमानेऽपि।
अन्तर्वर्ती वह्निः किं घातैश्छेद्यते तद्वत्॥ १३५॥

कठोर कुठारसे काठके काटनेपर क्या उसके घात-प्रतिघातसे काष्ठके अन्दर व्याप्त अग्नि भी कट जाती है?॥ १३५॥

तनुसम्बन्धाज्जातैः सुखदुःखैर्लिप्यते नात्मा।
ब्रूते श्रुतिरपिभूयोऽनश्नन्नन्योऽभिचाकशीत्यादि॥ १३६॥

इसी प्रकार शरीर-सम्बन्धसे प्राप्त हुए सुख-दुःखोंसे आत्मा लिप्त नहीं होता। इस विषयमें भगवती श्रुति भी बारम्बार कहती है कि 'अन्य (आत्मा) तो कर्म-फलको न भोगता हुआ केवल साक्षी-भावसे देखा ही करता है'॥ १३६॥

निशि वेश्मनि प्रदीपे दीप्यति चौरस्तु वित्तमपहरति।
ईरयति वारयति वा तं दीपः किं तथात्मापि॥ १३७॥

रात्रिके समय दीपकके जलते रहनेपर चोर घरमेंसे धन चुराकर ले जाता है; दीपक न उसे प्रेरित करता है, न रोकता है। इसी प्रकार आत्मा भी चित्तादि इन्द्रियोंको उनके व्यापारमें न नियुक्त करता है, न वियुक्त ही करता है॥ १३७॥

गेहान्ते दैववशात्कस्मिंश्चित्समुदिते विपन्ने वा।
दीपस्तुष्यत्यथवा खिद्यति किं तद्वदात्मापि॥ १३८॥

घरके भीतर दैवयोगसे किसीके प्रसन्न अथवा खिन्न होनेपर जैसे दीपक न तो प्रसन्न होता है, न खिन्न ही होता है, उसी प्रकार आत्मा भी चित्तादिके हर्ष-शोकमें सर्वथा असंग और उदासीन साक्षीमात्र ही रहता है॥ १३८॥

स्वप्रकाशता

रविचन्द्रवह्निदीपप्रमुखाःस्वपरप्रकाशाःस्युः ।
यद्यपि तथाप्यमीभिः प्रकाश्यते क्वापि नैवात्मा॥ १३९॥

यद्यपि सूर्य, चन्द्र, अग्नि और दीपक आदि अपने और पराये सबके प्रकाशक हैं, तथापि ये आत्माको कभी नहीं प्रकाशते॥ १३९॥

चक्षुर्द्वारैव स्यात्परात्मना भानमेतेषाम्।
यद्वा तेऽपि पदार्था न ज्ञायन्तेऽथ केवलालोकात्॥ १४०॥

तथा इनका भान भी चक्षु-इन्द्रियद्वारा परमात्मासे ही होता है अर्थात् केवल प्रकाशसे इन पदार्थोंका भी ज्ञान नहीं हो सकता॥ १४०॥

तत्राप्यक्षिद्वारा सहायभूतो न चेदात्मा।
नो चेत्सत्यालोके पश्यत्यन्धः कथं नार्थान्॥ १४१॥

उनमें भी यदि चक्षु-इन्द्रियके द्वारा आत्मा सहायक न हो तो ज्ञान नहीं हो सकता; यदि हो सकता तो प्रकाशके रहते हुए भी अन्धा पुरुष पदार्थोंको क्यों नहीं देख लेता?॥ १४१॥

सत्यात्मन्यपि किं नो ज्ञानं तच्चेन्द्रियान्तरेण स्यात्।
अन्धे दृक्प्रतिबन्धे करसम्बन्धे पदार्थभानं हि॥ १४२॥

(किंतु प्रकाश अथवा इन्द्रियके अभावमें भी) आत्माके रहते हुए अन्य इन्द्रियसे वस्तुका ज्ञान हो जाता है; जैसे अन्धे मनुष्यको नेत्र बन्द होनेपर भी हाथसे छूकर पदार्थका ज्ञान हो जाता है॥ १४२॥

जानाति येन सर्वं केन च तं वा विजानीयात्।
इत्युपनिषदामुक्तिर्बध्यत आत्मात्मना तस्मात्॥ १४३॥

उपनिषद् भी कहते हैं कि 'जिससे सब कुछ जाना जाता है, उसको किसके द्वारा जाने?' इसलिये आत्माको बन्धनमें डालनेवाला आत्मा ही है और कोई नहीं॥ १४३॥

नादानुसन्धान

यावत्क्षणं क्षणार्धं स्वरूपपरिचिन्तनं क्रियते।
तावद्दक्षिणकर्णे त्वनाहतः श्रूयते शब्दः॥ १४४॥

जबकि एक क्षण अथवा आधे क्षणके लिये भी स्वरूपका चिन्तन किया जाता है तो सीधे कानमें अनाहत-शब्द सुनायी देता है॥ १४४॥

सिद्ध्यारम्भस्थिरताविश्रमविश्वासबीजशुद्धीनाम्।
उपलक्षणं हि मनसः परमं नादानुसन्धानम्॥ १४५॥

नादानुसन्धान मनके लिये सिद्धिके आरम्भ, स्थिरता, विश्राम, विश्वास और वीर्य-शुद्धिका बतलानेवाला परम चिह्न है॥ १४५॥

भेरीमृदङ्गशङ्खाद्याहतनादे मनः क्षणं रमते।
किं पुनरनाहतेऽस्मिन्मधुमधुरेऽखण्डिते स्वच्छे॥ १४६॥

मन तो भेरी, मृदंग और शंख आदिके आघातजन्य नादोंमें भी एक क्षणके लिये मग्न हो जाता है, फिर इस मधुवत् मधुर, अखण्डित और स्वच्छ अनाहत नादकी तो बात ही क्या है?॥ १४६॥

चित्तं विषयोपरमाद्यथा यथा याति नैश्चल्यम्।
वेणोरिव दीर्घतरस्तथा तथा श्रूयते नादः॥ १४७॥

विषयोंसे उपराम होकर मन जैसे-जैसे स्थिर होता जाता है, वैसे-वैसे ही बाँसुरीके शब्दके समान दीर्घ और स्फुट नाद सुनायी पड़ने लगता है॥ १४७॥

नादाभ्यन्तर्वर्ति ज्योतिर्यद्वर्तते हि चिरम्।
तत्र मनो लीनं चेन्न पुनः संसारबन्धाय॥ १४८॥

नादके भीतर रहनेवाली जो चिर-ज्योति है, उसमें यदि मन लीन हो जाय तो फिर मनुष्य संसार-बन्धनमें नहीं पड़ता॥ १४८॥

परमानन्दानुभवात्सुचिरं नादानुसन्धानात्।
श्रेष्ठश्चित्तलयोऽयं सत्स्वन्यलयेष्वनेकेषु॥ १४९॥

परमानन्दका अनुभव करते हुए नादानुसन्धानसे प्राप्त हुआ चित्तका लय अन्य अनेक लयोंकी अपेक्षा अति उत्तम है॥ १४९॥

मनोलय

संसारतापतप्तं नानायोनिभ्रमात्परिश्रान्तम्।
लब्ध्वा परमानन्दं न चलति चेतः कदा क्वापि॥ १५०॥

संसार-तापसे सन्तप्त और नाना योनियोंमें आने-जानेसे श्रान्त (थका) हुआ चित्त परमानन्दको प्राप्त करके फिर कभी उससे विचलित नहीं होता॥ १५०॥

अद्वैतानन्दभरात्किमिदं कोऽहं च कस्याहम्।
इति मन्थरतां यातं यदा तदा मूर्छितं चेतः॥ १५१॥

अद्वैतानन्दके उद्वेगसे जबकि 'यह क्या है? मैं कौन हूँ? और किसका हूँ?' ऐसी जिज्ञासा मन्द पड़ जाय, उस समय चित्तको लीन समझना चाहिये॥ १५१॥

चिरतरमात्मानुभवादात्माकारं प्रजायते चेतः।
सरिदिव सागरयाता समुद्रभावं प्रयात्युच्चैः॥ १५२॥

चिरकालतक आत्मानुभव करते रहनेसे चित्त आत्माकार हो जाता है, जिस प्रकार समुद्रको जानेवाली नदी अन्तमें समुद्ररूप ही हो जाती है॥ १५२॥

आत्मन्यनुप्रविष्टं चित्तं नापेक्षते पुनर्विषयान्।
क्षीरादुद्धृतमाज्यं यथा पुनः क्षीरतां न यातीह॥ १५३॥

आत्मस्वरूपमें लगा हुआ चित्त फिर बाह्य विषयोंकी इच्छा नहीं करता, जैसे कि दूधमेंसे निकाला हुआ घी फिर दुग्ध-भावको प्राप्त नहीं हो सकता॥ १५३॥

दृष्टौ द्रष्टरि दृश्ये यदनुस्यूतं च भानमात्रं स्यात्।
तत्रोपक्षीणं चेच्चित्तं तन्मूर्छितं भवति॥ १५४॥

दृष्टि, द्रष्टा और दृश्यमें जो अनुस्यूत (भरा हुआ) है, उस तुरीयके ज्ञानमात्रसे यदि चित्त उसमें लीन हो गया हो तो यही इसकी लयावस्था है॥ १५४॥

याति स्वसम्मुखत्वं दृङ्मात्रं वा यदा तदा भवति।
दृश्यद्रष्टृविभेदो ह्यसम्मुखेऽस्मिन्न तद्भवति॥ १५५॥

जब चित्त स्वाभिमुख हो जाता है अर्थात् बाह्य विषयोंको छोड़कर केवल आत्मस्वरूपमें ही लीन रहता है तो उस समय (द्रष्टा, दृश्य और दृष्टि-रूप) त्रिपुटीका लय होकर केवल द्रष्टामात्र रह जाता है; और फिर उत्थानके समय भी इसको द्रष्टा और दृश्यका भेद नहीं भासता॥ १५५॥

एकस्मिन्दृङ्मात्रे त्रेधा द्रष्ट्रादिकं हि समुदेति।
त्रिविधे तस्मिँल्लीने दृङ्मात्रं शिष्यते पश्चात्॥ १५६॥

एक दृङ्मात्रमें ही द्रष्टा आदि त्रिपुटीका उदय होता है, उस त्रिपुटीका लय हो जानेपर केवल दृङ्मात्र ही रह जाता है॥ १५६॥

दर्पणतः प्राक्पश्चादस्ति मुखं प्रतिमुखं तदाभाति।
आदर्शेऽपि च नष्टे मुखमस्ति मुखे तथैवात्मा॥ १५७॥

दर्पणसे पूर्व और उसके पीछे भी मुख होता है, तभी उसमें उसका प्रतिबिम्ब पड़ता है। दर्पण यदि टूट जाय, तब भी मुख तो ज्यों-का-त्यों ही रहता है, इसी प्रकार आत्मा है। (वह भी शरीरादि उपाधियों और उनके जन्म-मरणादि धर्मोंसे सर्वथा असंग है)॥ १५७॥

[क्रमशः]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७१, शक १९३६, सन् २०१४, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु, कार्तिक कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें २।५५ बजेतक	गुरु	रेवती दिनमें ९। ३ बजेतक	९अक्टूबर	मेषराशि दिनमें ९। ३ बजेसे, अशून्यशयनव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ६। २१ बजे, पञ्चक समाप्त दिनमें ९। ३ बजे।
द्वितीया " १। ३१ बजेतक	शुक्र	अश्विनी " ८। १८ बजेतक	१० "	भद्रा रात्रिमें १। १ बजेसे, मूल दिनमें ८। १८ बजेतक।
तृतीया " १२। ३२ बजेतक	शनि	भरणी " ७। ५३ बजेतक	११ "	भद्रा दिनमें १२। ३२ बजेतक, वृषराशि दिनमें १। ५४ बजेसे, संकष्टी (करवा) श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ७। ५७ बजे, चित्राका सूर्य दिनमें २। ४७ बजे।
चतुर्थी " १२। २ बजेतक	रवि	कृत्तिका " ७। ५७ बजेतक	१२ "	× × ×
पंचमी " १२। ० बजेतक	सोम	रोहिणी " ८। २९ बजेतक	१३ "	मिथुनराशि रात्रिमें ९। ० बजेसे।
षष्ठी " १२। ३२ बजेतक	मंगल	मृगशिरा " ९। ३३ बजेतक	१४ "	भद्रा दिनमें १२। ३२ बजेसे रात्रिमें १। १२ बजेतक।
सप्तमी " १। ३२ बजेतक	बुध	आर्द्रा " ११। ५ बजेतक	१५ "	अहोईव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ११। २० बजे।
अष्टमी " २। ५९ बजेतक	गुरु	पुनर्वसु " १। ३ बजेतक	१६ "	कर्कराशि प्रातः ६। ३४ बजेसे।
नवमी " ४। ४९ बजेतक	शुक्र	पुष्य " ३। २३ बजेतक	१७ "	भद्रा रात्रिशेष ५। ५० बजेसे, मूल दिनमें ३। २३ बजेसे।
दशमी रात्रिमें ६। ५२ बजेतक	शनि	आश्लेषा सायं ५। ५६ बजेतक	१८ "	भद्रा रात्रिमें ६। ५२ बजेतक, सिंहराशि सायं ५। ५६ बजेसे, तुला-संक्रान्ति दिनमें ७। ५८ बजे।
एकादशी " ८। ५९ बजेतक	रवि	मघा रात्रिमें ८। ३४ बजेतक	१९ "	रम्भा एकादशीव्रत (सबका), मूल रात्रिमें ८। ३४ बजेतक।
द्वादशी " १०। ५९ बजेतक	सोम	पू० फा० " ११। ५ बजेतक	२० "	कन्याराशि रात्रिशेष ५। ३९ बजेसे, गोवत्सद्वादशी।
त्रयोदशी " १२। ४४ बजेतक	मंगल	उ० फा० " १। २१ बजेतक	२१ "	भद्रा रात्रिमें १२। ४४ बजेसे, भौमप्रदोषव्रत, धनतेरस, धन्वन्तरिजयन्ती, नरकचतुर्दशी।
चतुर्दशी " २। ७ बजेतक	बुध	हस्त " ३। १५ बजेतक	२२ "	भद्रा दिनमें १। २६ बजेतक, श्रीहनुमज्जयन्ती।
अमावस्या " ३। २ बजेतक	गुरु	चित्रा " ४। ४२ बजेतक	२३ "	तुलाराशि दिनमें ३। ५९ बजेसे, अमावस्या, दीपावली।

सं० २०७१, शक १९३६, सन् २०१४, सूर्य दक्षिणायन-शरद् ऋतु, कार्तिक शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ३। २७ बजेतक	शुक्र	स्वाती रात्रिमें ५। ४० बजेतक	२४ अक्टूबर	अन्नकूट, गोवर्धनपूजा (काशीसे अन्यत्र), स्वातीका सूर्य रात्रि १२। २७ बजे। सायन वृश्चिकका सूर्य दिनमें ७। १७ बजे।
द्वितीया " ३। २० बजेतक	शनि	विशाखा " ६। ७ बजेतक	२५ "	वृश्चिकराशि रात्रि १२। ० बजेसे, काशीमें गोवर्धनपूजा, यमद्वितीया भईयादूज।
तृतीया " २। ४३ बजेतक	रवि	अनुराधा रात्रिशेष ६। ४ बजेतक	२६ "	मूल रात्रिशेष ६। ४ बजेसे।
चतुर्थी " १। ३९ बजेतक	सोम	ज्येष्ठा " ५। ३५ बजेतक	२७ "	भद्रा दिनमें २। १२ बजेसे रात्रिमें १। ३९ बजेतक, धनुराशि रात्रिशेष ५। ३५ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
पंचमी " १२। ११ बजेतक	मंगल	मूल रात्रिमें ४। ४६ बजेतक	२८ "	मूल रात्रिमें ४। ४६ बजेतक।
षष्ठी " १०। २३ बजेतक	बुध	पू० षा० " ३। ३५ बजेतक	२९ "	श्रीसूर्यषष्ठीव्रत, श्रीस्कन्दषष्ठी।
सप्तमी " ८। १९ बजेतक	गुरु	उ० षा० " २। १० बजेतक	३० "	भद्रा रात्रिमें ८। १९ बजे, मकरराशि दिनमें ९। १५ बजेसे।
अष्टमी " ६। ५ बजेतक	शुक्र	श्रवण " १२। ३६ बजेतक	३१ "	भद्रा प्रातः ७। १३ बजे, गोपाष्टमी।
नवमी दिनमें ३। ४२ बजेतक	शनि	धनिष्ठा " १०। ५६ बजेतक	१ नवम्बर	कुंभराशि दिनमें ११। ४६ बजेसे अक्षयनवमी, पंचकारम्भ दिनमें ११। ४६ बजे, अयोध्या-मथुरा परिक्रमा।
दशमी " १। १८ बजेतक	रवि	शतभिषा " ९। १६ बजेतक	२ "	भद्रा रात्रिमें १२। ८ बजेसे।
एकादशी " १०। ५७ बजेतक	सोम	पू० भा० " ७। ४० बजेतक	३ "	भद्रा दिनमें १०। ५७ बजेतक, मीनराशि दिनमें २। ४ बजेसे, प्रबोधिनी एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी " ८। ४५ बजेतक	मंगल	उ० भा० रात्रिमें ६। १५ बजेतक	४ "	भौम प्रदोषव्रत, चातुर्मासव्रत समाप्त, तुलसी-विवाह, मूल रात्रिमें ६। १५ बजेसे।
त्रयोदशी प्रातः ६। ४४ बजेतक चतुर्दशी रात्रिशेष ५। २ बजेतक	बुध	रेवती सायं ५। ४ बजेतक	५ "	भद्रा रात्रिशेष ५। २ बजेसे, मेषराशि सायं ५। ४ बजेसे, वैकुण्ठचतुर्दशीव्रत, पंचक समाप्त सायं ५। ४ बजे।
पूर्णिमा रात्रिमें ३। ४१ बजेतक	गुरु	अश्विनी सायं ४। १४ बजेतक	६ "	भद्रा सायं ४। २२ बजेतक, कार्तिकी पूर्णिमा, गुरुनानक जयन्ती, मूल सायं ४। १४ बजेतक, कार्तिक स्नान समाप्त।

साधनोपयोगी पत्र

सच्ची चाहका स्वरूप

सादर हरिस्मरण! आपका कृपापत्र मिला। आपने मेरे प्रति जो श्रद्धा और सद्भाव प्रकट किये हैं, यह आपके प्रेमकी बात है। मैं तो अपनेको इसका अधिकारी नहीं समझता। सम्पूर्ण चराचरके प्रेरक वे सर्वान्तर्यामी श्रीहरि ही हैं। मुझसे भी वे ही किसी इच्छाकी पूर्ति करा रहे हैं। इससे यदि आपको आनन्द मिलता है तो आपको उन्हींका कृतज्ञ होना चाहिये और उन्हींके दर्शनोंकी लालसा बढ़ानी चाहिये।

आपने जो प्रश्न पूछे हैं, उनके विषयमें जैसे मेरे विचार हैं, नीचे निवेदन करता हूँ—

१. सच्ची चाहका स्वरूप यह है कि फिर चाही हुई वस्तुके बिना जीना कठिन हो जाता है। सच्ची चाहका रूप होता है अनिवार्य आवश्यकता। उस एक वस्तुके सिवा और किसीकी चाह तो बहुत पहले विदा हो जाती है। जब प्रेमी अपने इष्टके बिना रह नहीं सकता तो उसे दर्शन देना ही पड़ता है। फिर उसे खाना-पीना, सोना, उठना-बैठना सभी भार हो जाता है। सच्ची चाह उत्पन्न होनेके बाद फिर दर्शनोंमें देरी नहीं लगती।

२. सच्ची चाह निष्काम होनी चाहिये—इसमें तो कहना ही क्या है? यदि हमें भगवान्‌से उनके सिवा कुछ और लेनेकी लालसा होगी तो वे उसे ही देंगे, अपनेको क्यों देंगे? पूर्वकालमें सकाम उपासना करनेवालोंको भी दर्शन हुए हैं। परंतु इस प्रकारके दर्शन भगवत्प्रेमकी तत्काल वृद्धि नहीं कर सकते। उन्हें दर्शनानन्दकी यथार्थ प्राप्ति प्रायः नहीं होती। वे केवल भोग या मोक्ष ही पा सकते हैं, प्रेम नहीं।

३. चाहको बढ़ानेका एकमात्र उपाय यही है कि भोगोंको अनित्य और दुःखोत्पादक समझकर उनकी सब इच्छाएँ छोड़ दी जायँ। जबतक दूसरी कोई भी कामना रहेगी, तबतक भगवत्प्राप्तिकी उत्कण्ठा तीव्र नहीं हो सकती।

४. निरन्तर ध्यानके लिये तो निरन्तर ध्यानकी ही जरूरत है। जहाँ काम और ध्यान दोनों हैं, वहाँ तो दोनों ही रहेंगे। एक साथ दो बातें कैसे रहेंगी? तथापि जबतक वैसी लगन नहीं लगी है, तबतक ऑफिसके कामको भी उन्हींका काम समझकर कीजिये और काम करते हुए यथासम्भव उनका नाम-जप और चिन्तन भी चलाइये।

५. सोते हुए जप या ध्यान कैसे हो सकता है? निद्रा और जप एक कालमें तो रह ही नहीं सकते। निद्रामें वृत्ति लीन रहती है और वह उसी विषयमें लीन होती है, जो निद्रा आनेके ठीक पूर्व क्षणतक रहता है। अतः जप-ध्यान करते-करते सो जाइये। ऐसा करनेसे जब आप उठेंगे तब भी आपको मालूम होगा कि उठते ही पुनः वही जप और ध्यान आरम्भ हो गया है; क्योंकि वृत्ति जिसमें लीन होती है, उसीसे उदित भी होती है। इस प्रकार निद्राके आगे-पीछे जपका सम्पुट रहनेसे निद्राकालमें भी मन जपमें ही लीन रहेगा। शेष भगवत्कृपा।

सन्त-उद्बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

साधक महानुभाव! वस्तुस्थितिको जाननेके लिये हमें अपने सभी संकल्पोंको भली प्रकार देखना होगा। जो संकल्प विवेक-विरोधी हैं, यानी किसीके लिये भी अहितकर हैं और जिनको वर्तमानमें पूरा करना आवश्यक नहीं है, उनका त्याग करना होगा। जो संकल्प विवेक-विरोधी नहीं हैं, लेकिन अपनी सामर्थ्यसे परे हैं, यानी जिन्हें हम पूरा नहीं कर सकते, उन्हें प्रभु अथवा विश्वको समर्पितकर निश्चिन्त हो जाना है। ऐसा अनुभवमें आया है कि कालान्तरमें ऐसे शुभ संकल्पको पूरा करनेकी सामर्थ्य स्वतः आ जाती है।

जो शुद्ध संकल्प होते हैं और जिन संकल्पोंकी पूर्तिमें किसीका अहित नहीं है, वे स्वतः पूरे होते हैं, ऐसा विधान है। अशुद्ध संकल्पोंके त्यागसे निर्वैरता और निर्भयता आ जाती है। निर्वैरतासे द्वेष मिट जाता है और प्रीतिकी जागृति हो जाती है तथा निर्भयतासे आत्म-विश्वासमें दृढ़ता आ जाती है और अपने साधनमें अविचल श्रद्धा हो जाती है।

साधनकी दृष्टिसे हमें प्राप्त बलका सदुपयोग तथा प्राप्त विवेकका आदर करना है। बलके सदुपयोगसे सभी निर्बलताएँ मिट जाती हैं और विवेकके आदरसे नासमझी मिट जाती है और निःसन्देहता आ जाती है। निःसन्देहतासे जीवन और ज्ञानमें भेद नहीं रहता।

कृपानुभूति

अज्ञात शक्तिकी कृपा

घटना लगभग ३० वर्ष पुरानी है, महाविद्यालयकी साठ छात्राध्यापिकाएँ और आठ-दस कार्यकर्ता माउण्ट आबू, अहमदाबाद, बड़ौदा, बम्बई, गोवा, अजन्ता, एलोरा आदि दर्शनीय स्थानों और शहरोंको देखनेहेतु दस दिनके शैक्षिक भ्रमणपर गये हुए थे। २२ अक्टूबरको सभीको महाविद्यालयमें वापस पहुँचना था, परंतु सूर्यास्ततक कोई वापस नहीं आया। चिन्ता बढ़ने लगी। तरह-तरहकी कल्पनाएँ मनको कुरेदने लगीं। रात यों ही बीत गयी। २३ अक्टूबरका सूर्य भी उदय होकर अस्त हो गया। सभी स्थानोंपर ट्रंक-कालसे पूछताछ की, परंतु लड़कियोंका कहीं पता न चला। चिन्ता और भी अधिक बढ़ने लगी। हरिस्मरणके अतिरिक्त कोई रास्ता दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

रातके अँधेरेके साथ-साथ मनका अँधेरा भी बढ़ने लगा। सोचते-सोचते रातके नौ बज गये। अचानक किसीने सूचना दी—'घरपर पाँच मिनटके लिये बुलाया है।' मैं फोन छोड़कर चला गया। देखा तो पत्नी बेहोश पड़ी थीं। एक उलझन तो थी ही, दूसरी और आ गयी। मैं सोचने लगा—'न जाने प्रभुकी क्या इच्छा है? उलझन-पर-उलझन।' अचानक मुँहसे निकल गया—'प्रभो! अब अधिक तंग मत करो। मुझे बताओ, बच्चियाँ कहाँ हैं? मुझे पत्नीकी चिन्ता नहीं, उन बालिकाओंकी चिन्ता है। जिन्होंने मेरे भरोसे अपनी बालिकाओंको छोड़ा है, उन्हें क्या उत्तर दूँगा?'

मेरे ऐसा कहते ही मेरी पत्नी उसी मूर्च्छाकी हालतमें बोली—'चिन्ता मत कर! कलसे खाना नहीं खाया है, खाना खा ले। जिन बालिकाओंके लिये इतना चिन्तित है, वे सब सुरक्षित हैं। सापूतारा (गुजरात राज्य)-के पास रातके सवा बारह बजे बस एक घाटीमें गिर गयी थी। बसको एक पेड़के सहारे रोककर सबको बचा लिया गया है। बसको भी कुछ हानि नहीं हुई और लड़कियाँ भी सुरक्षित हैं। जा! चिन्ता छोड़! खाना खा ले!' आवाज पत्नीकी नहीं किसी औरकी थी? किसकी थी—यह मैं आजतक नहीं समझ पाया हूँ। वह मेरे लिये उस समय भी रहस्य था और आज भी रहस्य ही बना हुआ है।

किसी अज्ञात शक्तिद्वारा इतना विश्वास दिलानेपर भी मैं खाना न खा सका। पुनः फोनके पास आकर उसी चिन्तामें बैठ गया। ठीक दस मिनट बाद तीन लड़कियाँ आयीं और फूट-फूटकर रोने लगीं। उनकी हिचकियाँ बँध गयीं। मैं किसी अज्ञात आशंका और भयसे और भी भयभीत हो गया। उन्हें सान्त्वना दी और पूछा—'क्या हुआ?'

वे बताने लगीं, हम सुनने लगे, परंतु ये सब बातें औरोंके लिये नयी होते हुए भी मेरे लिये पुरानी पड़ चुकी थीं। सब कुछ वही था, जो मैं दस मिनट पूर्व सुन चुका था—वही दृश्य, वे ही बातें। एक बात नयी अवश्य थी; वह यह थी कि उस घाटीमें गिरकर आजतक कोई जीवित नहीं बचा था। सम्भवतः यह पहला चमत्कार था कि सभी लड़कियाँ और बस पूरी तरह सुरक्षित थीं। इससे भी बड़ा चमत्कार था कि जिस पेड़के सहारे बस रुकी, वह बहुत बड़ा वृक्ष नहीं, एक झाड़ीनुमा शक्ति थी, जो इन सभीको बचाने-हेतु चार सालसे उस स्थानपर मौन साधनामें लीन थी।

घटना घटित हो गयी, विचार अब भी चालू है, चालू रहेगा—वह अज्ञात शक्ति कौन थी? गीताके कर्मयोग और ईश्वरमें आस्था रखकर शुद्ध मनसे हम अपना कार्य करते रहें। यदि हमारी आस्था अटूट है तो निश्चित और निर्विकार रूपसे वह शक्ति, जिसमें हमारी आस्था है, हर प्रकारसे हमारी सहायता करती है। हमारी चिन्ता उसकी चिन्ता है, हमारी उलझन उसकी उलझन है। यह सच है।—बैजनाथ शर्मा

पढ़ो, समझो और करो

(१)

समदृष्टि

बात पुरानी है, मानव-जीवनमें समता और समदृष्टिके विषयपर हम चर्चा कर रहे थे। वहीं हमारे दो भूतपूर्व विद्यार्थी भी आकर बैठ गये थे। उन्होंने सत्य और स्वयं देखी हुई घटना वहाँ इस प्रकार बतायी—

थोड़े समय पूर्वकी यह घटना है। मेरे घरके समीप मार्गमें मेरी भानजी खेल रही थी। अचानक एक मोटर साइकिलवालेका झटका लगनेसे वह दूर जाकर गिरी। हम दौड़कर बाहर आये, तबतक मोटरसाइकिल चली गयी थी। हमने उसका पीछा किया, वह उस गाँवमें एक परिवारमें मेहमान था। हमने वहाँ जाकर कहा—'ध्यान रखना चाहिये, गाँवमें मोटरसाइकिल धीरे चलानी चाहिये।' आदि-आदि। मोटरसाइकिल चलानेवाला व्यक्ति कुछ बोले उससे पूर्व ही उसपर पीछे बैठे उसके साथीने कहा—'भाई! आप बैठिये, आपकी पुत्रीको चोट अवश्य आयी होगी, कारण कि वह दौड़कर आ रही थी। मैंने देख लिया और हाथका झटका देकर उसे ठेला, जिससे वह गिर गयी; परंतु उसे बचानेमें मेरा पैर एक पत्थरसे जा टकराया और देखिये कितनी अधिक चोट आयी है।' हमने देखा, सचमुच बहुत चोट आयी थी।

वे सज्जन जैसे अध्यात्ममें गहरे उतर गये हों, उस प्रकार गम्भीर स्वरमें बातको आगे बढ़ाते हुए बोले—'ऐसी घटनाओंकी सम्भावना पहलेसे किसीको थोड़े ही होती है। मैं जिस गाँवमें रहता हूँ, वह अमरेली-भावनगर रोडपर है। मेरा घर भी रोडके समीप ही है। एक दिन मैं अपने कार्यालयमें बैठा था कि एक ट्रक-ड्राइवर भागता-भागता मेरे कार्यालयमें घुस गया और मैं कुछ पूछूँ उससे पहले ही वह बोला—'बापू! रोडपर मुझसे दुर्घटना हो गयी है, दस-बारह वर्षका एक लड़का ट्रकके नीचे आकर मर गया है।' उसकी बात सुनकर मैंने कहा—'भयभीत न हो, जो होना था, वह हो गया। अब तुझसे कोई कुछ नहीं कहेगा।' परंतु वह मनुष्योंसे भयभीत होकर मेरी शरणमें आया था। पूरे गाँवमें हम प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। गाँवके लोग थोड़ा डरते भी थे। मैंने ड्राइवरके लिये पानी मँगाया।'

पाँच-सात मिनट हुए होंगे तभी एक सज्जन दौड़ते-दौड़ते मेरे कार्यालयमें आये और बोले—'बापजी! आपका लड़का ट्रक-दुर्घटनामें मर गया है।' इतना कहकर वह चला गया। मैंने एक दृष्टि ड्राइवरपर डाली। उसका सम्पूर्ण शरीर काँप रहा था। सिंहकी गुफामें स्वयं ही फँस जाने-जैसी उसकी स्थिति हो गयी थी।

थोड़ी देर मौन रहनेके पश्चात् मैंने कहा—'भाई! दोष तेरा नहीं है। दैवका विधान ही ऐसा था। यह तो दुर्घटना है, किसीने हत्या तो नहीं की है!'

ड्राइवर दौड़कर मेरे पैरोंमें गिर गया और रोने लगा। उसे मेरे वचनोंपर विश्वास ही नहीं होता था। मैंने जैसे-तैसे उसे शान्त किया। कोई उसे कष्ट न दे, यह सोचकर मैंने एक आदमी उसके साथ कर दिया और अमरेलीतक सकुशल पहुँचा दिया।

यह बात हम सब एकाग्रतापूर्वक सुन रहे थे—तभी वे हमसे बोले—'अब आपको मुझसे जो कहना हो, वह कहिये।' हम उपालम्भका एक शब्द भी नहीं बोल सके। ऊपरसे उनकी उदारता, समता, समदृष्टि तथा **'क्षमा वीरस्य भूषणम्'** वाक्य उच्चारण करते हुए अपने घर वापस आये। 'अखण्ड आनन्द'—**रमा यादव**

(२)

अपरिचितकी सहृदयता

यह घटना अप्रैल २००१ ई० की है। मैं सपत्नीक चारधामकी यात्रापर गया था। इसी क्रममें हम माता वैष्णोदेवीके दर्शनके लिये भी पहुँचे। वहाँ वैष्णोदेवी और भैरव बाबाके दर्शन तो आसानीसे हो गये, लेकिन जब हम अर्द्धकुँवारीदेवीके दर्शनके लिये पहुँचे तो वहाँ लम्बी लाइन लगी थी। हमें दर्शनके लिये ग्रुप ११६ नम्बरका प्रवेशपत्र मिला। प्रवेशद्वारपर ७४ ग्रुपका बोर्ड लगा हुआ था। इस लिहाजसे हमारा नम्बर देर रातमें ही आनेकी सम्भावना थी, जबकि उसी रात ११ बजे हमारी जम्मूसे नई दिल्लीके लिये ट्रेन थी। यह देखकर

हम मायूस हो गये।

इसे दैवी संयोग कहें या हमारा भाग्य कि हमें भीड़में एक ऐसे सज्जन मिले, जिन्होंने पिछले दिनसे प्रवेशपत्र ले रखा था। उनके प्रवेशपत्रपर छः लोगोंको जानेकी इजाजत थी, जबकि वे कुल चार लोग थे। हमने उन्हें अपनी परिस्थिति समझाते हुए साथ ले चलनेका अनुरोध किया। हमसे अपरिचित होनेके बावजूद वे इसके लिये खुशी-खुशी राजी हो गये। आधे घण्टेमें ही हम परिक्रमाक्षेत्रमें पहुँचकर दो-ढाई घण्टेमें अर्द्धकुँवारी देवीके दर्शनकर वापस आ गये।

लम्बी प्रतीक्षा-सूची देखकर हमें देवीके दर्शन दुर्लभ लग रहे थे, लेकिन एक अनजान शख्सने खुद हमें अपने साथ ले जाकर देवीके दर्शन करवाये।

उस समय दोपहरके १२ बज चुके थे। हमें थकावट अधिक थी, लिहाजा टट्टू किरायेपर लेकर कटरा पहुँचे और विश्रामकर रात्रिमें ११ बजेसे पहले ही स्टेशन पहुँच गये। ट्रेन भी अपने समयपर थी और हम वहाँसे नयी दिल्लीके लिये रवाना हो गये।

कहा जाता है कि जब ईश्वरकी मन्शा हो और उनका बुलावा आये, तभी हम उनके दर्शनोंके लिये जा सकते हैं। जिस सज्जनने हमें देवी अर्द्धकुँवारीके दर्शनोंके लिये अपने दलमें शामिल किया, उनसे मेरा पहलेसे कोई परिचय नहीं था। हमारे लिये तो वे साक्षात् देवदूत बनकर आये और हमें देवीके दर्शन करवाये। यह उनकी सहृदयता और भलमनसाहत ही थी, जो हमें समयपर देवीके दर्शन उपलब्ध हो सके और हम अपने तयशुदा कार्यक्रमके तहत अपने गन्तव्यस्थलतक पहुँच सके। आज आधुनिक बननेकी होड़ और भौतिकवादकी इस दुनियामें जहाँ अपने भी मदद करनेसे हिचकते हैं, वहीं उन अपरिचित सज्जनकी मददने हमारे मनमें इस भावको और पुख्ता कर दिया कि इन्सानियत अभी जिन्दा है। हमारा परिवार आज भी उनका आभारी है।

—ओ०पी० चौबे

(३)

देवीकी कृपा

मेरे पिताजी स्वर्गीय पण्डित राजकुमार चतुर्वेदी देवी गायत्रीके परम उपासक थे। उन्होंने मुझे बाल्यावस्थासे ही गायत्री-उपासनाके लिये प्रोत्साहित किया। मैंने भी जप बचपनसे ही प्रारम्भ कर दिया। देवीकी कृपासे उनके चरणोंमें मेरी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। उपासनाका यह क्रम अविराम रूपसे देश-विदेशकी यात्राके दौरान भी चलता रहा। गायत्री-उपासनाके ही परिणामस्वरूप मुझे परम पूज्य पहाड़ी स्वामी तथा स्वामी योगानन्दजीका आशीर्वाद भी प्राप्त हुआ।

इस समय मेरी अवस्था लगभग ९० वर्षकी है। गत वर्ष मुझे गायत्रीदेवीके उस चित्रको देखनेमें कठिनाई हुई, जिसकी उपासना मैं १९४२ ई० से कर रहा था। जाँचसे मालूम पड़ा कि मेरी नेत्र-ज्योति कम हो गयी है। इससे मुझे बड़ा मानसिक कष्ट हुआ। मैंने देवीसे तुरंत प्रार्थना की—माँ, मेरे समक्ष बड़े रूपमें आ जाओ। यह प्रार्थना मेरे हृदयसे निकली तथा मेरा गला रुँध गया।

चार-पाँच दिनके पश्चात् अकस्मात् मेरे पुत्रके पुराने सहपाठी श्रीअनूप वालिया गायत्रीदेवीका एक विशाल चित्र लेकर आये और बोले—अंकल, मैं सरकारी कामसे गुजरात गया था। वहाँसे आपके लिये यह चित्र लाया हूँ। चित्र अत्यन्त सुन्दर था। मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। लगा कि मेरी व्याकुलता देखकर माँ बड़े रूपमें आ गयीं।

चित्र इतना चित्ताकर्षक था कि मेरे कई मित्रोंने वैसे ही कई और चित्र मँगवानेका अनुरोध किया। अत: मैंने श्रीअनूपजीसे वैसे ही कुछ और चित्र मँगवा देनेको कहा। श्रीअनूपजी इस समय केन्द्रीय सरकारमें डायरेक्टरके पदपर कार्य कर रहे हैं। समयाभावके कारण उन्होंने अपने सहायकको दूकानका पता देकर चित्र लानेको कहा। सहायक कुछ दिनों बाद कार्यवश गुजरात गया। उसने लौटकर बताया कि उस पतेपर चित्रोंकी कोई दूकान नहीं है। श्रीअनूपजीको सन्देह हुआ। वे अगले सप्ताह स्वयं गुजरात गये, लेकिन वह दूकान नहीं मिली। आस-पासके दुकानदारोंसे पूछनेपर पता लगा कि वह दूकान बन्द हो गयी है। निराश अनूप वालियाने आकर मुझे सारा वृत्तान्त बताया।

आज भी गायत्री देवीके उस चित्रको देखकर मुझे

बार-बार आभास होता है कि देवी माँने उस दूकानको केवल इसीलिये प्रकट किया था ताकि मुझे विश्वास हो जाय कि मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली गयी है। देवी माँ मुझसे कभी अलग नहीं होंगी। देवी माँका यह चित्र बोलता है एवं माँका प्रेम बिखेरता है। यह माँका आशीर्वाद है।—शिवकुमार चतुर्वेदी

(४)

सुन्दरकाण्डकी शक्ति

बात सन् १९७८ ई० की है, मेरा बड़ा लड़का उन दिनों मुंसिफीकी ट्रेनिंगके लिये नैनीताल गया हुआ था। (अब वह जिला जज है) मैं उन दिनों ४० दिनका सुन्दरकाण्डका अखण्ड पाठ कर रहा था। एक दिन मैं पूजामें बैठा हुआ पाठ कर रहा था, तभी मेरे कानमें एक आवाज आयी कि तुम्हारे लड़केके साथ अनिष्ट हुआ। मैं अवाक् हो गया, मैंने हनुमान्‌जीको हाथ जोड़े, प्रभो! मेरे पुत्रकी रक्षा करो और पाठ करते-करते द्रवित हो गया। पाठ करनेके बाद मैं उठा, मन दुखी था, क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? मैं शामको मन्दिर गया, हनुमान्‌जीको प्रसाद चढ़ाया, मंगलवारका पवित्र दिन था, दिन भी प्रसादका था। बहुत देरतक हनुमान्‌जीके हाथ जोड़ता रहा और हनुमानचालीसा पढ़ा, पूजा करके पुजारीजीसे प्रसाद ग्रहण किया, घर आया, पत्नीको मनकी व्यथा बतायी, पत्नीने कहा—चिन्ता न करो, सुन्दरकाण्डका पाठ करते रहो, हनुमान्‌जी रक्षा करेंगे। वे बड़े दयालु हैं, पत्नी धार्मिक नारी है, पूजा-पाठमें अडिग विश्वास है, रोज मन्दिर जाती है, शिव एवं हनुमान्‌जीपर दृढ़ विश्वास है। सुन्दरकाण्डका पाठ बराबर चल रहा था, यह सब होनेपर भी शंका मनमें बनी रही, पुत्र-मोह था, पुत्र जब नैनीतालसे वापस घर लौटा तो मैंने उससे पूछा—बेटा! क्या तुम्हारे साथ ट्रेनिंगके समय नैनीतालमें कुछ अनहोनी हुई थी? पुत्र विस्मयमें पड़ गया। बोला—आपको कैसे पता चला कि मेरे ऊपर संकट आया था। मैंने कहा—हनुमान्‌जीकी कृपासे। वह बोला, मैं घोड़ेपर सवार होकर जा रहा था। एक साइडमें खाई थी, मैं खाईके बराबर चल रहा था, अचानक पैर टकरा गया और मैं खाईमें गिरनेसे बाल-बाल बचा, न सँभलता तो मृत्यु निश्चित थी। मैंने उसे बताया। भैया! मैं पूजा कर रहा था, अचानक आवाज आयी, तेरे पुत्रके साथ अनिष्ट हुआ। तब मैंने हनुमान्‌जीके बहुत हाथ जोड़े, प्रार्थना की। संकट टल गया, तबसे मैं हर मंगलवारको सुन्दरकाण्डका पाठ करता हूँ और प्रसाद बाँटता हूँ। सुन्दरकाण्डमें बड़ी शक्ति है।

—सुरेशचन्द्र अग्रवाल

(५)

ऑटोचालककी ईमानदारी

घटना सन् २०१२ ई० के जून माहकी है, इन्दौर (म०प्र०)-के निवासी हाईकोर्टके एक वकील श्रीव्यासजी सायंकाल ऑटोसे अपने घर वापस लौट रहे थे। घरके सामने ऑटोसे उतरनेपर जल्दीबाजीमें अपना बैग (पोर्ट फोलियो) ऑटोमें ही छोड़कर घर चले आये। ऑटोवालेको उन्होंने किराया दे दिया था, अतः वह भी ऑटो लेकर चला गया। थोड़ी देर बाद व्यासजीको याद आया कि बैग तो उन्होंने ऑटोमें ही भूलसे छोड़ दिया, परंतु अब हो ही क्या सकता था! ऑटोका नम्बर भी उन्होंने नोट नहीं किया था और न ही ऑटोचालकका फोन नम्बर। उनके बैगमें साढ़े छः लाखकी एफ०डी०, तीन पास बुक और नकद पाँच हजार रुपयोंके अतिरिक्त कुछ जरूरी कागजात भी थे। श्रीव्यासजीने बैग मिलनेकी उम्मीद छोड़ दी थी कि अचानक ऑटोचालकका फोन उनके मोबाइलपर आया कि आपका बैग, रुपये और सारे कागजात मेरे पास सुरक्षित हैं, मैं थोड़ी देरमें आपके घर आकर सब कुछ वापस कर जाऊँगा। आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें।

व्यासजीको और उनके घरवालोंको इस फोनसे बड़ी राहत मिली और थोड़ी ही देरमें ऑटोचालकने आकर उन्हें बैग, रुपये और कागजात वापस कर दिये। कृतज्ञ श्रीव्यासजीने ऑटोचालककी ईमानदारीसे प्रभावित होकर उसकी प्रशंसा करते हुए पुरस्काररूप कुछ रुपये देने चाहे, पर उस ईमानदार ऑटोचालकने सिर्फ इतना कहा कि 'आपकी अमानत आपके पास सुरक्षित पहुँच गयी, यही मेरा सबसे बड़ा ईनाम है।'

धन्य है वह ऑटोचालक, जिसने ईमानदारीकी ऐसी मिसाल कायम की।

[प्रेषक—मांगीलाल वर्मा]

मनन करने योग्य

विषयोंका विषवत् त्याग करो

एक रात्रि महाराज जनकने स्वप्न देखा, जिसमें वे निर्धन थे तथा उन्होंने भूखसे व्याकुल होकर इधर-उधरसे माँगकर थोड़े चावल इकट्ठे किये। जंगलमें लकड़ियाँ इकट्ठी करके उन्हें जलाया और मिट्टीके टूटे-फूटे बरतनमें चावलोंको पकाने लगे। गीली लकड़ियोंके कारण चावल पकनेमें थोड़ा समय लग रहा था। इधर महाराजका भूखसे बुरा हाल था, अत: उन्होंने अधपके चावलोंको पत्तेपर ठण्डा करनेके लिये फैला दिया। उन्होंने खानेके लिये एक ग्रास उठाया कि कहींसे भागता हुआ एक साँड़ आया, जिसने उनके अधपके चावलोंको रौंदा और मिट्टीमें मिला दिया।

महाराज जनक अपनी अत्यन्त दयनीय स्थितिपर फूट-फूटकर रोने लगे और मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़े। नींद खुली तो देखा कि वे अपने महलमें सुकोमल शय्यापर लेटे हुए हैं। जनकजीके शरीर और मनकी अत्यन्त व्याकुल स्थिति थी। वे रात भर सो न सके। एक ही प्रश्न उन्हें बेचैन कर रहा था कि स्वप्न सत्य था या वर्तमान सत्य है? अगले दिन राजदरबारमें विद्वानोंसे पूछा, किंतु सबके अपने-अपने उत्तर थे। महाराज जनकको कोई सन्तुष्ट नहीं कर पाया।

कुछ दिनोंके बाद एक दिन महाराज जनककी सभामें बारह वर्षके एक बालकने प्रवेश किया, जो आठ स्थानोंसे टेढ़े थे। उन्हें इस अवस्थामें देखकर सभासद् हँस पड़े। बालकने चारों ओर दृष्टि डालकर विनम्रतासे महाराज जनककी ओर मुड़कर कहा, 'राजन्! मैंने तो सुना था कि आपकी सभामें विद्वानों-पण्डितोंको ही स्थान प्राप्त है, लेकिन लगता है यह सभा तो चर्मकारोंकी सभा है! मैं यह इसलिये कह रहा हूँ कि चर्मकारकी दृष्टि चर्मपर ही रहती है, उससे आगेकी बात वह सोच भी नहीं सकता। इसी तरह सिर्फ बाहरी शरीरको देखनेवाले सत्-चित्-आनन्दस्वरूप आत्माको कहाँ देख पायेंगे? राजन्! मैं आपके प्रश्नका उत्तर देने आया था, आपके मनमें उठ रही जिज्ञासाका समाधान करने आया था, किंतु लगता है आप लोगोंके लिये बुद्धि-विलास भी एक व्यसन है।' महाराज जनक समझ गये कि यह बालक तत्त्वनिष्ठ है। उन्होंने कहा—'क्या आप मेरी शंकाओंका निराकरण कर सकते हैं?' अष्टावक्र बोले—'अवश्य! मैं आपको सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माका, आपके स्वरूपका साक्षात्कार करा सकता हूँ।' जनक अष्टावक्रके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम करके जिज्ञासाभरी दृष्टिसे उनकी ओर देखने लगे और बोले—'मुझे क्या करना होगा?' अष्टावक्र बोले—'आप क्या कर सकते हैं?' जनक बोले—'राज्य, वैभव, परिवार यहाँतक कि अपना शरीर भी अर्थात् सर्वस्व न्यौछावर कर सकता हूँ।' अष्टावक्र बोले—'नहीं! इन सबके त्यागनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि छोड़ना है तो विषयोंसे रागका त्याग करो। जिसने संसारके विषयोंसे आसक्ति त्याग दी है, वही नित्य मुक्त है।'

महाराज जनकने अष्टावक्रमुनिसे पहला प्रश्न किया—हे प्रभो! ज्ञान कैसे होता है? मुक्ति कैसे प्राप्त होती है? वैराग्यको कैसे प्राप्त होऊँगा? यह मुझसे कहें—

कथं ज्ञानमवाप्नोति कथं मुक्तिर्भविष्यति।
वैराग्यं च कथं प्राप्तमेतद् ब्रूहि मम प्रभो॥

(अष्टावक्रगीता १।१)

अष्टावक्र बोले—'हे तात! यदि तुम्हें सचमुच मुक्तिकी इच्छा है तो सर्वप्रथम विषयोंको विषके समान छोड़ दो और क्षमा, दया, आर्जव (सरलता) तथा सत्यका अमृतके समान सेवन करो।'

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत्त्यज।
क्षमार्जवदयातोषसत्यं पीयूषवद् भज॥

(अष्टावक्रगीता १।२)

महर्षिने राजा जनकको समझाया कि वासनाएँ ही संसार हैं, ऐसा निश्चय करके उन सभी वासनाओंका त्याग करो। वासनाओंके त्यागसे संसारका त्याग होगा। जहाँ-जहाँ तृष्णा है, वहीं-वहीं संसारको जानो। यह यथार्थ है। इसलिये परिपक्व, दृढ़ वैराग्यका आश्रय लेकर सभी प्रकारकी, सभी विषयोंकी तृष्णाका परित्याग करके सुखी होओ।—आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

(इस जपकी अवधि कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०७० से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०७१ तक रही है)

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'राजन्! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते और दूसरोंसे नाम-स्मरण करवाते हैं।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस वर्ष भी इस षोडश नाम-महामन्त्रका जप पर्याप्त संख्यामें हुआ है। विवरण इस प्रकार है—

(क) मन्त्र-संख्या ७०,२५,८०,५०० (सत्तर करोड़, पचीस लाख, अस्सी हजार, पाँच सौ)

(ख) नाम-संख्या ११,२४,१२,८८,००० (ग्यारह अरब, चौबीस करोड़, बारह लाख, अट्ठासी हजार)

(ग) षोडश नाम-महामन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है।

(घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने उत्साहसे जपमें योग दिया है। भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। भारतके अतिरिक्त बाहर फ्रामिंघम, मिडिलटाउन, यू०के०, यू०एस०ए०, यूनाइटेड किंगडम, नेपाल आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

स्थानोंके नाम—

अंगनापारा, अंगुल, अंडी, अंधराठाढी, अंबरनाथ, अंबाजोगाई, अंबा मुरैना, अंबाला कैंट, अंबाला छावनी, अंबाला शहर, अम्बेडकर गाँव, अँवरी, अकबरपुर, अकराबाद, अकलतरा, अकलेरा, अकोट, अकोड़ा, अकोदियामंडी, अकोला, अकोलागढ़, अगराई, अगराना, अचरोल, अचौसा, अछनेरा, अछेरा, अजबपुरा, अजमेर, अजीतगंज, अजीतपुर, अजीतपुरा, अटरिया, अटेलीमंडी, अठहठा, अडसीसर, अडावट, अतरपुरा, अतरसुमा, अतरी, अनगाँव, अनपरा, अमडाड़, अमनौर, अमरपुरकोडला, अमरपुरा, अमरा, अमरावती, अमरावती (घाट), अमरोहा, अमानगंज, अमिलिया, अमिला नौकापुरा, अमृतपुर, अमृतसर, अम्बाह, अरइल, अरड़का, अरनेठा, अरनोदा, अररिया, अररिया बैरगाछी, अर्जुनपुर, अर्रोली, अलकनन्दा, अलवर, अलीगढ़, अलीपुरकला, अल्मोड़ा, अवगिला अबाड़ा, अवरई, अवरीकला, अशोकनगर, असंद वार्ड नं० ४, असदपुर, असनावर, अहमदनगर, अहमदाबाद, अहिरौलिया-टोला, अहेरी, आइसन आई.टी. रोड, आऊवा, आगरा, आग्राम, आजमपकरिया, आड़की, आढ़सरबास, आणंद, आदित्यपुर, आदिलाबाद, आनन्दनगर, आना, आबूरोड, आभानेरी, आमगाँवबड़ा, आमागढ़, आरम्भा (रामपायली), आरा, आरोन, आर्वी, आष्टा, आसंग, आसैर, इंगतपुरी, इंदरवास, इंदौत, इंदौर, इकलहरा, इचलकरंजी, इचौल, इज्जतनगर, इजोत, इटही, इटावा, इटौरा, इसौली, इण्डेरी नगला, इलाहाबाद, इस्लामाबाद, इरांग पार्ट I-II, इरेल भेली I-II, ईसरदा, ईशानगर, उखुल, उछटी, उज्जैन, उडेला, उदगीर, उदयपुर, उदरादा, उधमसिंहनगर, उनियारा, उन्नाव, उमरधा वनखेड़ी, उमरापट्टी, उमरावगंज, उराव डीह, उलहासनगर, उल्दन, उस्मानाबाद, ऊँचिया, ऊगू, ऊद्पुर, ऊना, ऊमरी, ऊसरी, ऋषिकेश, एकहारा, एकान्तवाड़ा, एटा, एरू, ऐंचाया, ऐनखेड़ा, ओड़ारसकरी, ओडीट, ओडेकरा, ओबारा, ओरछाधाम, ओल्ड पलासिया, औंवा-बुजुर्ग, औदहा, औरंगाबाद, औरैया, कंचनपिंडरा, कंचनपुर, कंजाड़ी, कंसोपुर, ककराला, ककोला, कचन्दा, कचौरा, कछवा, कछुआ, कछुआ चकौती, कटक, कटगी, कटनी, कटरा, कटियाघाट, कटिहार, कटैया, कटुई, कठार, कड़ीला, कथगँवा, कथुवा, कथैयाँ, कनखल, कन्दवा, कनखल गाँव, कनेई, कनैड, कन्नौज, कन्हारी, कन्हौली गजपति, कन्नौद, कपासन, कफलोडी, कमरपुर, करम्मरपुर (ठेकमा), करकबेल, करड़ी, करनाल, करबगाँव, करसौत, करही (शुक्ल), कराह, कराहल, करेन्दुहा, करोरा, करौदी, करौदिया, कलकत्ता, कलिंगा, कल्याण, कवलपुरा मठिया, कसारी डीह, कसोलर, कहुआरा, काँगड़ा, कांगपोक्पी, कांग्लातोम्बी, काँवड टाउन, काउली, काकड़सागवाड़ा, काठमाण्डू (नेपाल), काठीकुण्ड, काण्डे, कादरगंज, कानपुर, कानूडीह, कान्दीवली, कापड़ीवास, कापरगंज, कापरेन, कामता, कामा, कालका, कालाडेरा, कालापहाड, कालाकसेतरा, कालीकट, कालूखाँड़, काशीपुर, कासगंज, कासिम बाजार, किदवईनगर, किनाथी, किशनगंज, किला, किसरौल, कुँआरिया, कुकडेश्वर, कुचामन सिटी, कुड़ाना, कुतबपुर, कुदिन्ना, कुन्हील पनेरा, कुमारडीह, कुमासजागीर, कुम्हारिया, कुरावली, कुर्याह, कुर्मा पाली, कुरदा, कुरुक्षेत्र, कुसुमपट्टी, कुसैला, कूँचलवाड़ाकला, कूचस, कूड़ाघाट, कृपालपुर, कृष्णगढ़, कृष्णनगर, केंकरा, केकड़ी, केनावली, केराप, केशोपुर, केशरपुरा, केसिंगा, कैथल, कैथवलिया, कैनखोला, कैमुआ, कैराना, कोंच, कोंडागाँव, कोईरागै, कोईलारी, कोकड़ी, कोकलकचक, कोकाबाजार,

कोटद्वार, कोटा, कोठी, कोड़री, कोथराखुर्द, कोनैला, कोब्रुलैखा, कोरबा, कोरदा, कोरापुट, कोर्रा, कोलकाता, कोलारस, कोलिया, कोलीटेक, कोलीवाड़ा, कोसीकला, कोसीर, कोहलमिश्र, कौड़िया, कौहाकुड़ा, कौलती (नेपाल), कौवाताल, क्योड़क, खंडवा, खकसीस, खजुरीरूण्डा, खजुहा, खटौरा खुर्द, खड्गवॉकला, खड़ीत, खत्रीवाड़ा, खन्ना, खप्टिहॉकलाँ, खरगापुर, खरगोन, खरारी, खरेड़ा, खवासा, खाचरोद, खातीबाबा, खानकित्ता, खारकलाँ, खालवा, खालवागाँव, खालिकगढ़, खिड़की, खिरनी, खिरलिया, खिरीथल लक्षीमा, खीवसर, खुजावा, खुँटपला, खुमार, खुरई, खुरपा, खुरहंड, खुर्जा, खूखूतारा, खेत, खेजरिया, खेलदेश पाण्डेय, खैगाँव, खैटराखुर्द, खैरखाँ, खैरनगर, खैराचातर, खैराबाद, खैराबादधाम, खैल, खोकसा, खोलाखेत, गंगटोप, गंगाखेड़, गंजवसौदा, गंजाम, गंगाशहर, गंगेव, गंज, गंजदारानगर, गंभीरा, गढ़कोट, गढ़पुरा, गढ़बसई, गढ़वा, गढ़िया रंगीन (शाहजहाँपुर), गढ़ा, गणेती, गदर पिपरिया, गदरपुर, गम्हरिया, गया, गरनिया, गरसाहड़, गारियाखेड़ी, गरीबनगर, गरोठ, गल्लाटोला, गहमर, गाँधीधाम, गाँधीनगर, गागर, गाजियाबाद, गाजीपुर, गाड़ाटोल, गाडरवारा, गायघाट, गिरगाँव, गिरिजास्थान, गिरिडीह, गीजगढ़, गुंजरा, गुंडरदेही, गुड़गाँव, गुड़ाकला, गुढ़ाकटला, गुढ़ानाथवता, गुना, गुरुदासपुर, गुरैया, गुलपाड़ा, गुलबर्गा, गुहला, गोंडा, गोगोलाव, गोगोली, गोटेर, गोठड़ा, गोपालपुर, गोपिबुंग, गोरखपुर, गौरेगाँव, गोल, गोलाघाट, गोवडीहा, गोविन्दगढ़, गोविन्दनगर, गोविन्दपुर, गौरिया वरारी, ग्वालियर, घर्गोट, घघरा, घटियाली, घरसोंधी, घरैहली, घाटकोपर, घाटवा, घाटासेर, घिंचलाय, घुंसी, घुघुली, घुराणा, घोठा, घोराठी, घोसिया, चंडीगढ़, चंडीस्थान, चंदला, चंदेरी, चंदौसी, चंद्रनगर, चन्द्रपुर, चंदनपुर, चक, चकरा, चकमदारी, चकौती, चपकीबघार, चमखर, चमौली, चम्पाघाट, चरथावल, चाँडेल, चाँदपुर, चाकरोद, चाकुलिया, चाचा, चाचौड़ा, चार हजारे, चास, चिचोली, चितभवन, चिनवट, चितापुर, चित्तौड़गढ़, चित्रकूट, चिनारथलकला, चिनिया, चिलौली, चुड़ा चाँदपुर, चुल्हाड, चुरू, चेन्नई, चेवड़ीधगोगी, चैतड़, चोधई, चोरगढ़, चोपड़ा, चोरौत, चौखा, चौखुटिया, चौखुटी, चौधरी बसन्तपुर, चौमहला, चौरास, चौली, चौसार, चौहटन, छकना, छतर, छत्तागंगोह, छाणीबाजार, छापड़ा, छापर, छिन्दवाड़ा, छिरास, छीपावड़, छोटालाम्बा, जंगबहादुरगंज, जंघोरा, जकातखाना, जगतपुरा, जगदलपुर, जगदीशपुर, जगदेवपुर, जगाधरी वर्क्सशाप, जटनी, जनापुर, जनोटी पालड़ी, जनौरा, जबलपुर, जमरोहीकला, जमशेदपुर, जमुड़ी, जमालुद्दीनपुर, जमोड़ी, जम्मू, जयनारायण (व्यासनगर), जयन्त कोलियरी, जयपुर, जरयाई, जरूड़, जरौल, जलगाँव, जलपाईगुड़ी, जलालगढ़, जलतरी, जलोदा खाटयान, जल्तूरी, जवल, जशो, जसदेवपुर, जसवन्तपुरा, जॉजगीर-चॉपा, जाजरदेवल, जाजली, जाजोता, जानडोल, जानीपुर, जामजोधपुर, जामनगर, जामपाली, जायधाकर्रा, जालना, जालन्धर, जालसू, जालोर, जियो, जींद, जुगसलाई, जालौन, जियाराम राघवपुर, जुट्ठा, जुलाहकड़ी, जुलाहापाड़ा, जेरई, जैतगढ़, जैतारन, जैतो, जैपूर, जैसलमेर, जैसलसर, जोकहाई, जोगीपुर, जोगेन्द्रनगर, जोधपुर, जोरी, जौनपुर, जौलखेड़ा, जौलजीवी, जौहा अंवाह, ज्वालापुर, ज्योलीकोट, झला, झहुराटभका, झाँसी, झालरापाटन, झाला, झुन्झूनू, झूँसी, झूलाघाट, झिलमिला, झीमरकालरी, झोझूकला, टुंडी, टूण्डरी, टपरोग, टाउन, टारी, टिहोली, टीकमगढ़, टेघरा, टेमर, टोंक, टोका, टोडाराय सिंह, टोडीजागीर, टोरड़ा, ठकुरापार, ठकठौलिया, ठठारी, ठाणी, ठाणे, ठीकरिया, ठाँ, ठुटी, डंगनिया, डंगालपारा, डकोर, डडूका, डबरा, डबोक, डलेरिया, डबारो, डालमियानगर, डालीगंज डिंडौरी, डिगुलपुरा, डिडवाड़ी, डिमौली, डिलारी, डीग, डीह, डीडवाना, डुमरा, डुमेहर, डूँगरपुर, डेलापीर, डोंगरगढ़, डोंगरिया, डोबखुमाड़, डोमचॉच बाजार, ढकनालहिया, ढढवाल, ढढ़ानामिल्ली, ढाँगू, ढाकिया, ढाणा, ढीमरखेडा, ढेकवारी, ढेगाडीह, ढोलबाजार, तँवरा, तरकेडी, तरखान, तरौका, तर्भा, तल्याहड़, ताथेड़, तारानगर, ताल, तालबन्ना, तिगाँव, तिमसिना, तिलकवाड़ा, तिली, तिलोकपुर, तिवसा, तितरिया, तिसपरी, तीनफेड़िया, तुनी, तेल्हारा, तोंडार-उदयगीर, तोक्या, तोला, तोरीबारी, तोलरा, तोसीणा, त्रिपनीपुरा कोची, त्रिपुरी, थरेट, थाणे, थुलवासा, दखलाना, दड़ीबा, दतिया, दरियापुर, दरौना, दलसिंहसराय, दव्यार, दसनकरेड़ा, दसरंगपुर, दसूहा, दहमी, दहिवद, दातारपुर, दातारामगढ़, दानापुर कैंट, दामनजोती, दामोदरपुर, दिग्धी, दियरी, दिमनी, दिलोना, दिलौरी, दिल्ली, दीक्षितपुर, दीगरा, दीपाखेड़ा, दीनपुर, दुधपुरा, दुबारीदुबे, दुबेपुर, दुमका, दुर्ग, देईखेड़ा, देरगाँव, देव, देवकीनगर, देवखैरा, देवठी, देवगाँव, देवतोली, देवनगर, देवरी, देवपुरी, देवरा, देवरिया, देवरीकला, देवरीनाहर, देवलगाँव, देवली, देवास, देहरादून, दौलतगंज, दौलतपुर चौक, दौलतपुरा, दौसा, द्वारका, द्वारी, धनसार, धनहरा, धानीखेड़ा, धनौरामण्डी, धमधा, धमनगाँव, धरमपुरी, धरमपेठ, धरवार, धरोगढ़ा, धर्मापुरा, धसनिया, धामन्दा, धार, धारजोल, धाली, धुलीया, धुले, धूमनगंज, धूलवा, धोला भाटा, धौलपुर, धौलाकुँआ, नअगा, नईबाजार, नकटुआ, नगरगाँव, नगलाकुंजल, नगलाजुआ, नदियामी (गोठ), नदौरा, नन्दावता, नन्हावारा कला, नबाबगंज, नबीनगर, नयापुरवा, नयी दिल्ली, नरकण्डा, नरपतगंज, नरसिंहपुर, नरायनपुर, नरीखेड़ा, नन्हवाराकला, नल्लाजेरला, नवलगढ़, नवलखा, नांगलोई, नांदन, नांदिया, नांदियाखेड़ा, नांदेड़, नाकोट, नागपुर, नागलपुर, नागेश्वरनाथ, नागोद, नागौर, नाचनी, नाथूखेड़ी, नानामाण्डवा, नारनौल, नारवा, नारायणगढ़,

नारायणपुर, नालछा, नासिक, नाहन, नाहरगढ़, निगदी, निजामाबाद, निनावला, निबिहा, निमसर, निमाज (पाली), निम्बोला, निरालानगर, नियामताबाद, निरौधा, निरझरण, निवाड़ी, निहरी, नीदर, नीमच, नीमताल, नीलगिरि, नेनूपट्टी, नेपाल, नेवढ़िया, नेवरा, नेवारी (फुलवारी), नैनवा, नैनवारा, नैनी (डोहरिया), नैनीताल, नोएडा, नोनार (पीरो), नोनीहाट, नोनैती, नोहर, नौतनवाँ बाजार, नौगवाँ पकड़िया, नौगाँव, नौगॉव (पट्टीचौरा), पंचकुला, पंडरी, पंडेर, पकड़िया नौगवाँ, पगारा, पचपदरानगर, पचामा, पचावली, पचोर, पटना, पटना सिटी, पटियाला, पटियालीगेट, पटेगना, पटौदी, पट्टी, पड़रिया चेतसिंह, पडोलिया, पतालघुटकुरी, पताको, पतारी, पत्योरा, पथरिया, पथरी, पनवाड़ी, पनिया, पन्त्यूड़ी, पन्धाना, पद्मनाभ नगर, पद्मानगर, पथुली, पन्हौना, परवतसर, परतुर, परभड़ी, परलीबैजनाथ, परवारीपुरा, परसवाड़ाघाट, परसाधाम, परसापाली, परसिया, परसौली, पलवल, पलाई, पलाड़ा, पलानसरी, पलेई, पहरा, पहाड़पुर, पहुरजिया, पांडातराई, पाटई, पाड़रिडाड़ा, पाण्डुकेश्वर, पाण्डेयडीह, पानगॉव, पानदा, पानापुर, पानीगॉव, पायली, पारादीप, पालदी, पालाकोल, पालाक्कड़, पाली, पाली मारवाड़, पारसपकड़ी, पारसदीप, पावटा, पाहल, पिंडरई, पिजड़ा, पिछोर, पिठौरा, पिथापुरा, पिथौरा, पिथोरागढ़, पिपरगौर, पिपरा, पिपरावा, पिपरिया, पिपली आचार्यान्, पिलखुआ, पिलाकिछा, पिलोवनी, पिसावा, पीठ पीलीभीत, पीठीपट्टी, पीपलारावा, पुखाऊ, पुणे, पुनासा, पुपरीबाजार, पुरन्दाहा, पुराना भर्थना, पुरूलिया, पुरेना, पुलगाँव, पुण्डरी, पूर्णिया, पोखरभिण्डा, पोखरिया, पोलीपाथर, पोड़ीकला, पौआखाली, पौना, प्रतापगढ़, प्रीतमपुरी, फतेहगढ़, फतेहपुर, फरीदाबाद, फर्रुखाबाद, फागा, फागी, फाजिलका, फारविशगंज, फाजिलपुरखास, फिरवासी, फिरोजपुरझिरका, फीला, फुलवरियाकैन्ट, फुलवरिया टोला, फुलहर, फुलेरा, फूलपुररामा, फूलबेहड़, फैजाबाद, बंगलौर, बखरी बाजार, बगदड़िया, बगरु, बगाय, बचकोट, बछड़ा, बछरावा, बछौर, बजरिया, बजौरा, बटाला, बटेरा, बड़कागाँव, बड़की भौजी, बड़खेरवा, बड़पास, बड़वाह, बड़ागाँव, बड़ारावला-माचलपुर, बड़ारी, बड़ालू, बडेज, बड़ेहरदी, बड़ौदा, बढ़लठोर, बतरौली, बनबसा, बनवरीबसंत, बनैल, बबेरू, बभनान, बभनी, बभनौली, बमुरीपुर, बमिढ़ा, बमूछपरा, बमोरा, बरवा, बरइला, बरईपारा, बरखेड़ा, बरखेडालोया, बरगदवा, बरडा, बरारी, बरिकल, बरियापुर, बरेली, बरीपुरा, बरूड़, बरेलीकलॉ, बरेलीखुर्द, बरैल, बरोरी, बरोहा, बर्धमान, बलगढ़, बलवड्डा, बलवाड़ा, बलिगाँव, बलिया, बलेवा, बलौदा, बसंत, बसईकाजी, बसदेहड़ा, बसरेहर, बसान, बसुहार, बस्ती, बहनेरा, बहादुरपुर, बहेरी, बस्तर, बॉकी, बाँगरोद, बाँदा, बाँद्रा, बाँसाकला, बाँसवाडा, बाकानेर, बागपत, बाघामारा, बाघौद, बाडमेर, बाड़ापारी, बाढ़, बाढ़बाजार, बाणगंगा, बादा, बाबापुर, बामैरीताल, बामनबाड़ा, बायतू, बारा, बाराबंकी, बारासीवनी, बासबाग, बालसी, बालांगीर, बालाघाट, बाली, बालूमाजरा, बालोतरा, बावड़ियाकला, बावल, बिकौर, बिगहिया, बिटोरा, बिजईमऊ, बिदोली, बिनौली, बिवार, बिरसिंहपुर, बिलौदा, बीकानेर, बीड़, बीनागंज, बीरमपुर, बीवडकला, बिरेझर, बुंगल, बुधौलियाना, बुर्दा, बुलन्दशहर, बुल्ढाणा, बूदी, बेउर, बेगू, बेगमगंज, बेनियाकाबास, बेनीगंज, बेनोड़ा (शहीद), बेमेतरा, बेरी, बेरीनाग, बेलटुकरी, बेलड़ा, बेलगढ़, बेलसोन्डा, बेलासद्दी, बेलोना, बेहट, बैकुंठ, बैगनी, बैगाकाया, बैतूल, बैतूलबाजार, बैना, बैरटी, बैला, बोदवढ़, बोधन, बोरनार, बोराड़ा, बोरीस, बौरब्यास बडगो, ब्यावर, ब्योही, ब्राह्मपल्ली, भगवानपुर, भटगाँव, भटवलिया, भटवाड़ा, भटिंडा, भटेवराबाजार, भट्टू (बैजनाथ), भड़ापिपल्या, भडूको, भदरु धनेटा, भदानीनगर, भदौरा, भदौला, भमकी, भयन्दर, भरतनगर, भरतपुर, भरथना, भरसी, भरूच, भलस्वा ईसापुर, भवनपुरा, भवानीपुर, भॉटा, भाटाखेरी, भांडेर, भाऊगढ़, भाटियोंका खेड़ा, भाठापार, भड़ापिपल्या, भागलपुर, भरौलीखुर्द, भिडासरी, भिण्ड, भिण्डुवा, भिनाय, भिलाई, भिवण्डी, भिवानी, भीखनपुर, भीड़वालमाजरी, भीनासर, भीमदासपुर, भीरा, भुता, भुन्नास, भुवनेश्वर, भुसावल, भून्तर, भूपालगंज, भेलाखुर्द, भैसड़ा, भैरमपुर, भैरुन्दा, भैसोड़ा, भोकरधन, भोगपुर, भोजपुर, भोपाल, भौनापार, भ्रमरपुर, मँगता, मंगलपुर, मंजेश्वर, मंजलपुर, मंझौली, मंडी, मंडी अटेली, मंडीगोविन्द, मंडीगोविन्दगढ़, मंडीदीप, मंडीबामोरा, मंडाभीमसिंह, मंत्रिपुखी, मंदसौर, मंसूरपुर, मक्यांग, मखदुमपुर, मगरलोड, मगराना, मगरिया, मगोरी, मचाड़ी, मझगुवाँखुर्द, मझवलिया, मझेवला, मझरैन, मटियारी, मड़ोरी, मतवाना, मत्तेपुर, मथुरा, मदनगंजकिशनगढ़, मदारीचक, मधुपुर, मधुबनी, मनकहरी, मनकापुर, मनसुली, मन्नाडपल्ली, मरुकिया, मलँगवा (नेपाल), मलकापुर, मलगी, मलहद, मलाड, मलासा, मलिका, मलेनपुरवा, महका, महगाँव, महतोडीह, महनियाबाँस, महमदाबाजार, महरौनी, महरौली, महलसरा, महाजनान, महादेवा, महाराजगंज, महाराजपुर महावीर नगर, महासमुन्द, महिदपुर, महिषी, महुआखेड़ा, महुआखुर्द, महुआशाला, महुडर, महुरा, महू, महेन्द्रगढ़, महेसाना, महेसी, महोवा, माजलपुर, मांडल, मांडावास, माओहिंग, माचलपुर, माजरा, माडलगढ़, माणिकपुर, मानसर खेड़ी, मानसरोवर, मानसा, मानहड़, मानिकनगर, मानेडाड़ा, मारगोमुण्डा, मावली, माहिद्पुर, मिरज, मिश्रपुर, मिसरहिया, मीन्डी, मीतली, मीरजापुर, मीरापुर, मीलवा, मुँगेली, मुम्बई, मुक्तेश्वर, मुजफ्फरनगर, मुजफ्फरपुर, मुड़पार, मुबारकपुर

(काँटी), मुरई, मुरवानी, मुरहट्टी, मुरादाबाद, मुरार, मुरैना, मुर्ई, मुर्तुपार, मुलताई, मुल्लनपुर, मुलुण्ड, मुसेद्पुर, मुहम्मदपुर, मूडी, मूढ़ीपार, मूल, मेंदक, मेघनगर, मेघौल, मेटपल्ली, मेठवाड़ा, मेड़तासिटी, मेड्डुआडीह, मेदिनीपुर, मेरठ, मेवड़ा, मैरून्दा, मैशांग, मोगा, मोटबुंग, मोतियाडुमरिया, मोदीनगर, मोरपा, मोलकोन, मोलानी, मोहतरा, मोहनघाटी, मोहाली, मौजपुर, मौडमंडी, यमुनानगर, यवतमाल, युवराजपुर, यशोदानगर, यादवछापर, रंगिया, रघुपुरमसौरा, रठेरा, रणग्राम, रतनगवाँ, रतनपुर, रतनपुरा, रतनमहका, रतनामपुर, रतलाम, रतवाई, रतनागरपुर, रनचिराई, रन्नौद, रबूपुरा, रमपुरा, ररी, रसूलपुर, रहली, रहुआ-तुलसियाही, राँची, राऊ, राघवगढ़, राजकोट, राजनाद गाँव, राजपुर, राजुरी, राजरूपपुर, राजुरा, राजाआहर, राजाका सहसपुर, राजापारा, राजीवनगर, राजौरी गार्डन, राटन, राधाऊर, रानापुर, रानीकटरा, रानीगंज, रानीबाग, रामकोला, रामगढ़ जबन्धे, रामड़ी, रामनगर, रामपुर, रामपुरवा, रामदयालनगर, रामपुरडीह, रामपुरा, रामपुरी पुरानी कर्वी, रामबाग, रामसहायवाला, रामेश्वर कम्पा, रायगढ़, रायपुर, रायपुरशिवाला, रायपुरसानी, रायबरेली, रायरंगपुर, रायला, रायसिंहनगर, रायसेन, रावतपुर, रिरुआ, रिवालसर, रिसदा, रींगस, रुई, रुखाई नेवादा, रुदासी, रुड़की, रुदौली, रुद्रप्रयाग, रेनवाल किशनपुर, रेवड़ापुर, रेवाड़ी, रेवासीपकड़ी, रैगाँव, रैहन, रोकड़ी, रोड्डू, रोपर, रोपा, रोहनिया, रोहासी, रोहिणी, लक्सर, लक्ष्मणगढ़, लक्ष्मीसागर, लक्ष्मीपुर सायत, लखनऊ, लखनपुर, लखीमपुर खीरी, लखौरा, लगमा, लट्ठा, लडवा, लरछुट, ललितनगर, ललितपुर, लश्कर, लहरी, लहार हवेली, लहेरिया सराय, लाखेरी, लाडपुरा, लार, लालगंज, लालगढ़, लालनगर, लालपुर, लालसोट, लारौन, लावन, लिकोटी, लिखमीपुर, लिलुआ, लीमाचौहान, लुंगफौ, लुधियाना, लुहारी, लोईसिंघ, लोसिंहा, लोहरदगा, लोहरियासाल पल्ला, लोहटिया बाजार, लोहाघाट, लोहारा, लैमाखोंग, वंडा, वंशीपुर, वजकोट, वजीरपुर, वडोदरा, वदनरेंगगाई, वनमोर, वर्धा, वलांडी, वल्लभनगर, वसई, वसाहल, वसुन्धरा, वाड़ा, वापी, वाराणसी, वासुदेवा, वाहेगाँव दिमनी, विछलावा, विजनौर, विजयपुररेती, विजराकाया कला, विजावर, विदिशा, विनिका, विरखेड़ा, विरहाकन्हाई, विलसंडा, विलासपुर, विल्टीगढ़, विशाखापट्टनम, विशाड़, विशुनपुरवा, विसरापार, विष्णुपुर, वीरगंज (नेपाल), वीरपुर, वीरपुरा, वीरमित्रापुर, वीरवाँ बाबू टोला, वीरझर, वृन्दावन, वेल्डवार, वैदगंज, वैर, वैशाली नगर, व्यावर, शंकराचार्यनगर, शक्ति, शहडोल, शांतिनगर गुलरिया, शान्तिपुर, शाजापुर, शामगढ़, शामली, शासन, शास्त्रीनगर, शाहकोट, शाहजहाँपुर, शाहजहाँपुर निनायाँ, शाहतलाई, शाहपुर, शाहपुरा, शाहबाद, शाहापुर, शिंदी, शिकारपुर, शिकोहाबाद, शिमला, शिवगंज, शिवपुर, शिवपुरी, शिवली, शिवाड़, शिवसागर, शेखपुर, शेखावाटी, शेरगढ़, शेरूड़ा, शोरापुर, श्योपुर, श्यामलाहिल्स, शोरापुर, श्रीगंगानगर, श्रीनगर, श्रीपुरा, श्रीबालाजी, श्रीरामपुर, श्रीरामपुरी भगवानपुर, श्रीवास शीतलापुरी, संगढ़ेसिया, संगरिया, संदणा, संगनेश्वरनगर, संगावली, संघर, संघोल, संबलपुर, सआदतगंज, सइकिया सुबुरी, सकराया, सकरी, सकूराबाद, सक्ती, सरथुआ, सठिया, सडहरा, सतना, सतारा, सदरुद्दीनपुर, सदशिवपेठ, सन्तोलाबारी, सपलेड, सपिया, समन्ना, समस्तीपुर, सरदमपिंडरा, सरवानिया महाराज, सरसपुर, सरसी, सराईधेला, सराईपाली, सरिया, सरेई-चम्पुआ, सरैधी, सरैयाँ, सरैया प्रवेशपुर, सलखुआ, सलमगाँव, सल्लोपाट, सवाईमाधोपुर, ससना, ससहा, सहडोल, सहरसा, सहार, सहारनपुर, सहुरिया, सांगटी, सांगरिया, सांमातल्ला साम्भरलेक, सानड, सावण, साईन, सागर, सादाबाद, सादातगंज, सादीपुर, सानण पण्डितान, सापुआपल्ली, सामला, सावरमती, सारवाड़ी, सारेयाद, सालोन बी, सावड़, सावली, सासनी, साहबगंज, साहिबाबाद, साहू, साहूकारा, साहेबगंज, सिंगारपुर, सिंगावल, सिंगोली, सिंगहा यूसुफपुर, सिंहानी, सिउरी गोपीनाथपुर, सिकन्दरपुर, सिकहुला, सिधारी, सितारगंज, सिधौली, सिनपुर, सिन्धोरा जागीर, सिमलगुडी, सिमलैगर बाजार, सिमरिया, सिमरी, सिरपुर कागजनगर, सिराई, सिरोही, सिलीगुड़ी, सिवनी, सीकर, सीतामढ़ी, सीथल, सीधी, सीनखेड़ा, सीपरीबाजार, सीहोर, सुन्दरी, सुअरहा, सुखलिया, सुगवा, सुजानपुरा, सुजिया मोहलिया, सुठालिया सुधारबाजार, सुनाम, सुन्हेत, सुपौल बाजार, सुरखण्डनगरी, सुरखेड़ा, सुरपूरा, सुरही, सुरखी, सुर्री, सुल्तानपुर, सूठा, सूथा, सूरत, सूरनगर, सूरजपुर, सूरजपुर कला, सेढ़ा, सेतीखोला, सेनाकला, सेनापति, सेमरडाड़ी, सेमरा घुनवारा, सेमरा बाजार, सेमराहाट, सेमरिया, सेमारी, सम्फेंजुंग, सेंठा, सेरा (नेपाल), सेरो, सेलापुर, सेलु, सेवठागढ़, सैंथिया, सैबसू, सैमल चौड़, सोंगर, सोडाला, सोढ़ालिया, सोनई, सोनापुर, सोनापुर हाट, सोनाहातु, सोनीपत, सोमजीगुडा, सोपेंजा नेपाली, सोयांजी नेपाली, सोरखी, सोलापुर, सोहन, स्याना, स्वामीनारायण छपिया, हंसनगर, हजारीबाग, हटनी, हटवा, हथौड़ाखेड़ा, हनुमानगढ़, हनुमानगढ़ भिनगा, हबड़ा, हमीदपुर, हमीरपुर, हरटया, हरदा, हरदी, हरदोई, हरसौली, हरिद्वार, हरिपुरकलाँ, हरियावाला, हरिपुर, हरहरपुरा सोनारी, हरिहरपुर, हल्द्वानी, हसनपालीया, हसलपुर, हसुआ, हस्तिनापुर, हाँसी, हाजीपुर, हातिखुआ, हातोद, हाथरस, हापुड़, हामी, हालीशहरकोना, हिंगनघाट, हिंगोली, हिंडौनसिटी, हिरवार, हिसार, हुंडालखेल, हिगोलाकला, हिम्मतगंज, हिरनमगरी, हुतरी, हुबली, हुमायूँपुर, हुस्सेछपरा, हूर, हैदराबाद, होजाई, हौजी, हौजे, होशंगाबाद, होशियारपुर, हौआमौआड, हौसपुरा।

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

आज सारे संसारमें जीवनकी जटिलताएँ बढ़ती जा रही हैं। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें संलग्न हैं। वे अपने क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंका अहित करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कलह और हिंसाके वातावरणमें अशान्त स्थिति है। देशके कुछ भागोंमें तो हिंसाका नग्न ताण्डव दिखायी दे रहा है। अधिकतर लोग मानसिक तनावके शिकार बनते जा रहे हैं। कलिका प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। प्रश्न यह होता है कि इस स्थितिका समाधान क्या है? ऋषि-महर्षि, मुनि और शास्त्रोंने इस स्थितिको अपनी अन्तर्दृष्टिसे देखकर बहुत पहलेसे यह घोषित कर दिया है कि 'कलिकालमें मानव-कल्याण और विश्वशान्तिके लिये श्रीहरि-नामके अतिरिक्त कोई दूसरा सुलभ साधन नहीं है।' इसीलिये यह बात जोर देकर शास्त्रोंमें कही गयी है कि 'भगवान् श्रीहरिका नाम ही एकमात्र जीवन है। कलियुगमें इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा—चारा नहीं है'—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(ना०पूर्व० ४१। ११५)

हमारे शास्त्रोंके अतिरिक्त अनुभवी संत-महात्माओंने भी भगवन्नाम-स्मरण-जपको कलियुगका मुख्य धर्म (ऐहिक-पारलौकिक कल्याणकारी कर्तव्य) माना है। इतना ही नहीं, जगत्के समस्त धर्म-सम्प्रदाय भी किसी-न-किसी रूपमें भगवान्के नाम-स्मरण-जपके महत्त्वको प्रतिपादित करते हैं। नामके जप-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई भी नियम नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी कहा है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।

'हे भगवन्! आपने लोगोंकी विभिन्न रुचि देखकर नित्य-सिद्ध अपने बहुत-से नाम कृपा करके प्रकट कर दिये। प्रत्येक नाममें अपनी सारी शक्ति भर दी और नाम-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रखा।'

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये आज श्रीभगवन्नामका स्मरण ही एकमात्र उपाय है। ऐसा कौन-सा विघ्न है, जो भगवन्नाम-स्मरणसे नहीं टल सकता और ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल सकती? इस कलिकालमें मंगलमय भगवान्के आश्रयके लिये भगवन्नामका सहारा ही एकमात्र अवलम्बन है। अतएव भारतवर्ष एवं समस्त विश्वके कल्याणके लिये, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सुख-शान्तिके लिये तथा साधकोंके परम लक्ष्य एवं मानव-जीवनके परम ध्येय—भगवान्की प्राप्तिके लिये सबको भगवन्नामका स्मरण-जप-कीर्तन करना चाहिये।

अतः 'कल्याण' के भाग्यवान् ग्राहक-अनुग्राहक, पाठक-पाठिकाएँ स्वयं तथा अपने इष्ट-मित्रोंसे प्रतिवर्ष भगवन्नाम-जप करते-कराते आये हैं।

गत वर्ष पंचानबे करोड़ नाम-जपकी प्रार्थना की गयी थी। इस वर्ष विभिन्न स्थानोंसे जो सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं; उनके अनुसार सत्तर करोड़, पचीस लाख, अस्सी हजार, पाँच सौ मन्त्रके नाम-जप हुए हैं, इस बार पिछले वर्षकी अपेक्षा श्रीभगवन्नाम-जपमें कमी ही हुई है। अतः भगवन्नाम-प्रेमी महानुभावोंसे प्रार्थना है कि जपकी संख्यामें विशेष उत्साह दिखलायें, जिससे भगवन्नाम-जपमें वृद्धि हो सके। आशा है, अधिक उत्साहसे नाम-जप होता रहेगा।

जपकर्ताओंकी सूचना अभीतक लगातार आ रही है, किंतु विलम्बसे सूचना आनेपर उसे प्रकाशित करना सम्भव नहीं है। अतः जपकर्ताओंको जप पूरा होने (चैत्र शुक्ल पूर्णिमा)-के अनन्तर तत्काल सूचना प्रेषित करनी चाहिये, जिससे उनके जपकी संख्या प्रकाशित की जा सके।

आप महानुभावोंसे पुनः इस वर्ष पंचानबे करोड़ भगवन्नाम-मन्त्र-जपकी प्रार्थना की जा रही है। यह नाम-जप अधिक उत्साहसे करना तथा करवाना चाहिये, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

निवेदन है कि पूर्ववत् कार्तिक शुक्ल पूर्णिमासे जप आरम्भ किया जाय और चैत्र शुक्ल पूर्णिमा (वि० सं० २०७२)-तक पूरा किया जाय। पूरे पाँच महीनेका समय है।

भगवान्के प्रभावशाली नामका जप स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र सभी कर सकते हैं। इसलिये 'कल्याण' के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक सबके परम कल्याणकी भावनासे स्वयं अधिक-से-अधिक जप करें और प्रेमके

साथ विशेष चेष्टा करके दूसरोंसे भी जप करवायें। नियमादि सदाकी भाँति ही हैं।

(१) जप प्रारम्भ करनेकी तिथि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा (दिनांक ६।११।२०१४ ई०) गुरुवार रखी गयी है। इसके बाद किसी भी तिथिसे जप आरम्भ कर सकते हैं, परंतु उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ल पूर्णिमा, वि० सं० २०७२ दिन शनिवार (दिनांक ४।४।२०१५)-को कर देनी चाहिये। इसके आगे भी अधिक जप किया जाय तो और उत्तम है।

(२) सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

(३) एक व्यक्तिको प्रतिदिन उपरिनिर्दिष्ट मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप अवश्य ही करना चाहिये, अधिक तो कितना भी किया जा सकता है।

(४) संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे अथवा अंगुलियोंपर या किसी अन्य प्रकारसे भी रखी जा सकती है। तुलसीजीकी माला उत्तम होगी।

(५) यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रातःकाल उठनेके समयसे लेकर चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय—सोनेके समयतक इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

(६) बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो बादमें अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

(७) संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं; उदाहरणके रूपमें—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—सोलह नामके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपें तो उसके प्रति मन्त्र-जपकी संख्या १०८ होती है, जिसमें भूल-चूकके लिये ८ मन्त्र बाद कर देनेपर गिनतीके लिये एक सौ मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिन जो भाई-बहन मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर हमें अन्तमें सूचित करें। सूचना भेजनेवाले सज्जनोंको जपकी संख्याके साथ अपना नाम-पता स्पष्ट अक्षरोंमें लिखना चाहिये।

(८) प्रथम सूचना तो मन्त्र-जप प्रारम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र पूर्णिमातक जितनी जप-संख्याका संकल्प किया हो, उसका उल्लेख रहे और दूसरी बार जप आरम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या उल्लिखित हो।

(९) प्रथम सूचना प्राप्त होनेपर जपकर्ताको सदस्यता दी जाती है। द्वितीय सूचना भेजते समय सदस्य-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये।

(१०) जप करनेवाले सज्जनको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। स्मरण रहे, ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक होकर प्रभावक बनते हैं।

(११) सूचना संस्कृत, हिन्दी, मराठी, मारवाड़ी, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी, उर्दूमें भेजी जा सकती है।

सूचना भेजनेका पता—

नामजप-कार्यालय, द्वारा—'कल्याण' सम्पादकीय विभाग, गीताप्रेस, पो०—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)

प्रार्थी—

राधेश्याम खेमका

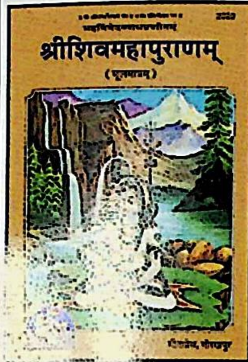
सम्पादक—'कल्याण'

राम जपु, राम जपु, राम जपु बावरे। घोर भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे॥
एक ही साधन सब रिद्धि-सिद्धि साधि रे। ग्रसे कलि-रोग जोग-संजम-समाधि रे॥
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो, बाम रे। राम-नाम ही सों अंत सब ही को काम रे॥
जग नभ-बाटिका रही है फलि फूलि रे। धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे॥
राम-नाम छाड़ि जो भरोसो करै और रे। तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे॥

[विनय-पत्रिका]

श्रीभगवन्नाम-जपके जापक महानुभावोंको अपनी स्थायी सदस्य-संख्या एवं नाम-पता साफ-साफ अक्षरोंमें लिखना चाहिये, जिससे उनके ग्राम/नगरका शुद्ध नाम दिया जा सके। [सं०]

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार



श्रीशिवमहापुराणम् मूलमात्रम् [मोटा टाइप] (कोड 2020) ग्रन्थाकार—इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म शिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। इसमें इन्हें पंचदेवोंमें प्रधान अनादि सिद्ध परमेश्वरके रूपमें स्वीकार किया गया है। शिव-महिमा, लीला-कथाओंके अतिरिक्त इसमें पूजा-पद्धति, अनेक ज्ञानप्रद आख्यान और शिक्षाप्रद कथाओंका सुन्दर संयोजन है। सचित्र, सजिल्द मूल्य ₹२५०, **संक्षिप्त शिवपुराण** (केवल हिन्दी) विशिष्ट संस्करण, (कोड 1468) मूल्य ₹२५०, सामान्य संस्करण (कोड 789), मूल्य ₹२०० [गुजराती, बँगला, कन्नड़, तेलुगु] भी उपलब्ध।

पुरुषोत्तमसहस्रनामस्तोत्रम् (कोड 2021)—पुराण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुके पुराण, महाभारत, [illegible]द आदि ग्रन्थोंमें अनेक सहस्रनाम वर्णित हैं। पुरुषोत्तमसहस्रनाम उन्हीं भगवान्का एक विशिष्ट स्तोत्र है। इसमें श्रीमद्भागवतमें प्रथम स्कन्धसे द्वादश स्कन्धतक वर्णित लीलाओंके आधारपर बने नामोंको स्तोत्ररूपमें निबद्ध किया गया है। मूल्य ₹१०

आदर्श देशभक्त, रंगीन (कोड 2019) ग्रन्थाकार—प्रस्तुत पुस्तकमें भारतके महान् देशभक्त नेताओं—श्रीदादाभाई नौरोजी, सर फिरोजशाह मेहता, लोकमान्य तिलक, मदनमोहन मालवीय, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस आदि ३२ देशभक्तोंके सचित्र प्रेरक चरित्रोंका संकलन है। मूल्य ₹२५

स्तुति (बँगला), **(कोड 1996)**—मूल्य ₹१२५, **(कोड 1998)—ललितासहस्रनामस्तोत्र** (तमिल) मूल्य ₹१२, **(कोड 1999)—विदुरनीति** (तमिल) मूल्य ₹१२

गीता-दैनन्दिनी—(सन् २०१५) अब उपलब्ध

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।)

पूर्वकी भाँति सभी संस्करणोंमें सुन्दर बाइंडिंग तथा सम्पूर्ण गीताका मूल-पाठ, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-मुहूर्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, रूलदार पृष्ठ आदि।

		रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्च अतिरिक्त
पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 1431)—गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद,	मूल्य ₹ ७०	₹ २५
,, ,, (बँगला अनुवाद (कोड 1489), ओड़िआ अनुवाद (कोड 1644), तेलुगु अनुवाद (कोड 1714)	मूल्य ₹ ७०	₹ २५
सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 503)—गीताके मूल श्लोक एवं सूक्तियाँ	मूल्य ₹ ५५	₹ २५
पॉकेट साइज— **प्लास्टिक आवरण (कोड 506)**— गीता-मूल श्लोक,	मूल्य ₹ ३०	₹ २०

व्यापारिक संस्थान दीपावली/नववर्षमें इसे उपहारस्वरूप वितरित कर गीता-प्रसारमें सहयोग दे सकते हैं। [गीताप्रेसकी निजी थोक पुस्तक-दूकानोंसे थोक खरीदनेपर नियमानुसार डिस्काउण्ट भी उपलब्ध है। दूकानोंका पता कवर पेज ३ पर देखें।]

ग्राहकोंसे निवेदन—कृपया अपना **मोबाइल नं० ग्राहक संख्यासहित** सूचित करें जिससे आपको शुल्क प्राप्ति, अंक प्रेषण आदिकी भविष्यमें सूचना दी जा सके।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

प्र० ति० २०-९-२०१४
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014-2016

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT	LICENCE No. WPP/GR-03/2014-2016

'कल्याण' वर्ष ८९, जनवरी २०१५ ई० का विशेषाङ्क—'सेवा-अङ्क'

भगवत्प्राप्ति—आत्मोद्धारके संसाधनोंमें 'सेवा' की अपूर्व महिमा है। सेवाधर्म इतना विलक्षण तथा महिमामण्डित है कि इसका निर्वाह करने और निःस्वार्थ सेवाकी सीख देनेके लिये स्वयं भगवान् भी अपने निजधामका परित्यागकर मनुष्यरूपमें अवतार धारण करते हैं—*'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।'* सेवाव्रत महान् तप है, महान् त्याग है और महान् साधना है। सच्ची सेवा यही है कि जीवको भगवान्की ओर लगा देना और उसका भगवच्चरणारविन्दोंमें अनुराग उत्पन्न करा देना। सेवाधर्मकी उपेक्षा, अवहेलनाका ही यह परिणाम है कि आज सारा विश्व, सारी मानवता राग, द्वेष, वैमनस्य, ईर्ष्या, डाह, महान् दुःख एवं सन्तापकी अग्निमें झुलस रहा है। कहीं चैन नहीं, कहीं शान्ति नहीं, सुख नहीं—सर्वत्र तनाव व्याप्त है। सेवा और सहानुभूतिमें भगवान्का वास रहता है। सेवाप्रेमीजन स्वयं तो तर जाता है और दूसरे लोगोंको भी तार देता है—'स तरति स तरति स लोकांस्तारयति।'

इन्हीं सब दृष्टियोंसे कल्याणके आगामी वर्ष २०१५ के विशेषाङ्कके रूपमें 'सेवा-अङ्क' प्रकाशित करनेका निर्णय लिया गया है। इसमें मुख्य रूपसे सेवाका स्वरूप, सेवाकी अवश्यकरणीयता, सेवा न करनेके दुष्परिणाम, सेवाके आयाम, सेवाके बाधक और साधकतत्त्व, अनन्य सेवाके दृष्टान्त आदि महत्त्वपूर्ण विषयोंका समावेश करनेका विचार है। मनुष्यमें सुषुप्त सेवाभाव जाग्रत् हो सके और फिर वह तदनुकूल व्यापारमें प्रवृत्त हो जाय तो यह श्रम सार्थक होगा।

वार्षिक-शुल्क— ₹२००, ₹२२० (सजिल्द)। पञ्चवर्षीय-शुल्क— ₹१०००, ₹११०० (सजिल्द)

Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-www.gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।

निम्नलिखित सभी गीताप्रेस गोरखपुरकी निजी दूकानों एवं स्टेशन-स्टालोंपर 'कल्याण'का शुल्क जमा कराके रसीद प्राप्त की जा सकती है। निजी दूकानोंसे विशेषाङ्क/मासिक अङ्क उपलब्ध होनेपर लिया जा सकता है। सामान्यतया मासिक अङ्क गोरखपुरसे भेजनेकी व्यवस्था है।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

'गीताप्रेस' गोरखपुरकी निजी दूकानें

इन्दौर-४५२००१	जी० ५, श्रीवर्धन, ४ आर. एन. टी. मार्ग
ऋषिकेश-२४९३०४	गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम
कटक-७५३००९	भरतिया टावर्स, बादाम बाड़ी
कानपुर-२०८००१	२४/५५, बिरहाना रोड
कोयम्बटूर-६४१०१८	गीताप्रेस मेंशन, ८/१ एम, रेसकोर्स
कोलकाता-७००००७	गोबिन्दभवन-कार्यालय; १५१, महात्मा गाँधी रोड
गोरखपुर-२७३००५	गीताप्रेस—पो० गीताप्रेस
जलगाँव-४२५००१	७, भीमसिंह मार्केट, रेलवे स्टेशनके पास
दिल्ली-११०००६	२६०९, नयी सड़क
नागपुर-४४०००२	श्रीजी कृपा कॉम्प्लेक्स, ८५१, न्यू इतवारी रोड
पटना-८००००४	अशोकराजपथ, महिला अस्पतालके सामने
बेंगलोर-५६००२७	१५, फोर्थ 'इ' क्रास, के० एस० गार्डेन, लालबाग रोड
भीलवाड़ा-३११००१	जी ७, आकार टावर, सी ब्लाक
मुम्बई-४०००02	२८२, सामलदास गाँधी मार्ग मरीन लाईन्स स्टेशनके पास
राँची-८३४००१	कार्ट सराय रोड, अपर बाजार, बिड़ला गद्दीके प्रथम तलपर
रायपुर-४९२००९	मित्तल कॉम्प्लेक्स, गंजपारा, तेलघानी चौक
वाराणसी-२२१००१	५९/९, नीचीबाग
सूरत-३९५००१	वैभव एपार्टमेन्ट, नूतन निवासके सामने, भटार रोड
हरिद्वार-२४९४०१	सब्जीमण्डी, मोतीबाजार
हैदराबाद-५०००९५	४१, ४-४-१, दिलशाद प्लाजा, सुल्तान बाजार

इन स्टेशन-स्टालोंपर कल्याणके ग्राहक बन सकते हैं

दिल्ली	(प्लेटफार्म नं० १२)	राँची	(नं० १)
नयी दिल्ली	(नं० १६)	मुजफ्फरपुर	(नं० १)
हजरत निजामुद्दीन [दिल्ली]	(नं० ४-५)	समस्तीपुर	(नं० २)
कोटा [राजस्थान]	(नं० १)	छपरा	(नं० १)
बीकानेर	(नं० १)	अहमदाबाद	(नं० २-३)
गोरखपुर	(नं० १)	राजकोट	(नं० १)
कानपुर	(नं० १)	भरुच	(नं० ४-५)
लखनऊ	[एन० ई० रेलवे]	वडोदरा	(नं० ४-५)
वाराणसी	(नं० ४-५)	सिकन्दराबाद [आं० प्र०]	(नं० १)
मुगलसराय	(नं० ३-४)	रायपुर [छत्तीसगढ़]	(नं० १)
हरिद्वार	(नं० १)	बेंगलोर	(नं० १)
पटना	(मुख्य प्रवेशद्वार)		

फुटकर पुस्तक-दूकानें

चूरू-	ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, पुरानी सड़क।
ऋषिकेश-	मुनिकी रेती।
तिरुपति-	शॉप नं० ५६, टी० टी० डी० मिनी शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, तिरुमलाई हिल्स।
बेरहामपुर-	म्युनिसिपल मार्केट काम्प्लेक्स, ब्लाक-बी, स्टाल नं० ५७—६०, प्रथम तल।

ज्योतिषतत्त्वांक (कोड 1980) जनवरी २०१४ का विशेषाङ्क अब पुस्तक रूपमें—पिछले विशेषाङ्कसे अधिक संख्यामें उपलब्ध करानेके बाद भी अनेक पाठकोंको ज्योतिषतत्त्वांकका वार्षिक ग्राहक नहीं बनाया जा सका। अतः पुस्तक रूपमें प्रकाशित। मूल्य ₹१३० डाकखर्च अतिरिक्त।